ॐ

* वन्देवीरम् *

पाटलि पुत्रका इतिहास

लेखक—

खरतर गच्छाधिराज जं० यु० प्र० वृ०
भ० श्री पूज्यजी श्रीजिनरत्न सूरिजी
महाराजके शिष्य पं० प्र० यति श्री
सूर्य्यमलजी महाराज ।

प्रकाशक—

श्री संघ पटना

प्रथम वार
१०००

मूल्य
सदुपयोग

नं. 349

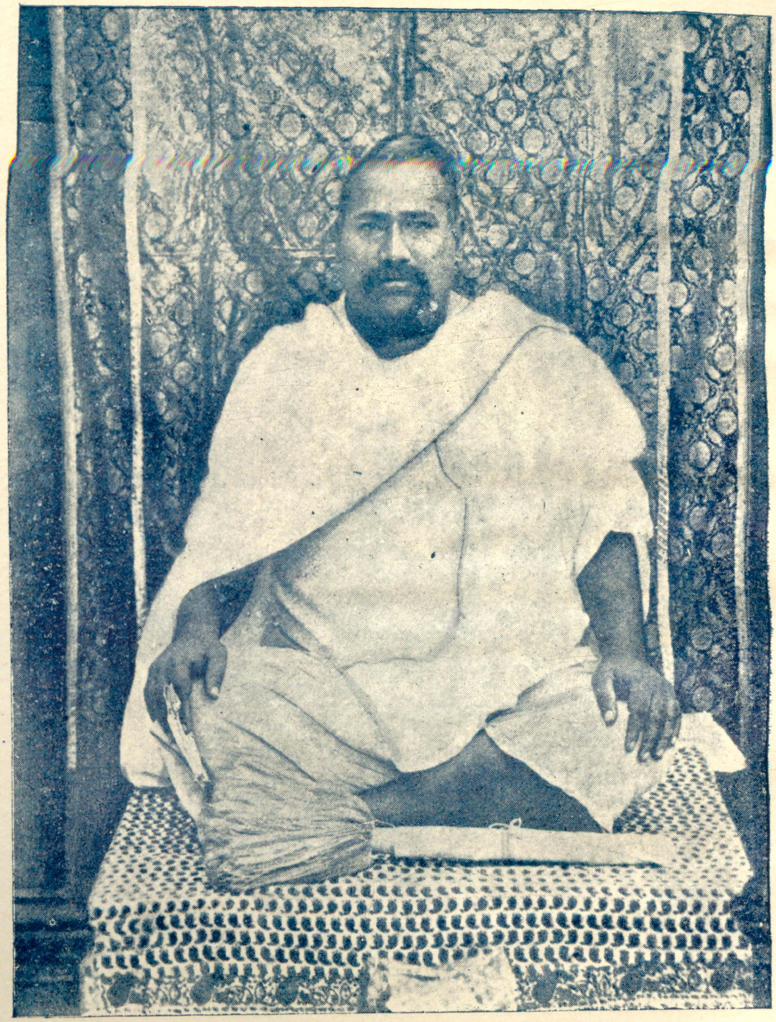

श्रोमज्जैनाचार्य जं० यु० प्र० वृ० भ० श्री पूज्यजी
श्रीजिनरत्न सूरिजी महाराज।

*श्री *

प्रातस्मरणीय: पूज्यपाद,

श्रीगुरुजी महाराज जं० यु० प्र०

बृ० भट्टारक श्री १००८ श्रीपूज्यजी

श्रीजिनरत्न सूरिजी महाराज

के

कर कमलोंमें सादर

समर्पित ।

सूर्य्यमल्ल यतिः

पुस्तक मिलनेके पते—

सेठ मङ्गलचन्द शिवचन्द

झाबक चौक बाजार,

पटना सिटी

जैन श्वेताम्बर, नवयुवक समिति

नं० ३१ बांसतल्ला गली,

कलकत्ता।

बाबू बुधसिंह जौहरी,

ठि० बाड़ेकी गली,

पटना सिटी।

॥ श्रीः ॥

भूमिका

कहने की कोई आवश्य कता नही हैं, कि आज कल सभ्य संसार पुस्तकके महत्व तथा उपयोगिताको समझने लगे गया है और उसकी दृष्टि पुस्तकोंका प्रणयन एवं प्रकाशनकी ओर आकृष्ट हुई है एवं नित्य नयी नयी पुस्तकोंका आविर्भाव हो रहा है। सबसे अधिक हर्ष की बात यह है, कि इन दिनों अधिक पुस्तकें सामाजिक धार्मिक तथा ऐतिहासिक लिखी जा रही हैं, यह देशके लिये भावी उन्नति तथा सौभाग्यका सूचक है।

यह प्राकृत पुस्तक (पटनेका इतिहास) जिसके विषयमें मैं दो एक शब्द लिखनेको प्रस्तुत हुआ हूं यह ऐतिहासिक पुस्तकके लेखक...३१...बांशतल्ला गल्ली जैन पोसालके अध्यक्ष जैन गुरु पं० प्र० श्रीमान् सूर्यमलजी यति हैं और प्रकाशक श्री संघ पटना है।

यद्यपि यह पुस्तक आकारमें बहुत छोटी होनेके कारण इस पुस्तकमें इतिहास की बहुत सी आवश्यकीय बातें लिखी न जासकी हैं तो भी यह पुस्तक बहुत उपयोगी तथा विशेष आदरणीय है।

इस पुस्तकमें सभी बातें उपयुक्त तथा प्रामाणिक लिखी हुई है व्यर्थ तथा अनावश्यक एक भी बात नहीं है।

देखनेसे स्पष्ट विदित होता है, कि लेखकने अन्वेषण करनेमें सभी सम्प्रदायके अनेक ग्रन्थोंको भली भांति अवलोकन करके विषय चुननेका बहुत बड़ा प्रयास किया है।

इस पुस्तकमें प्रधानतः जैन समाजके विषयमें तो सभी बातें लिखी हुई हैं तथापि अन्य समाजके लिये भी यह पुस्तक अति उपकारी है कारण कि लेखक महोदयने अन्य समाजकी भी अनेक आवश्यकीय तथा छिपी हुई बातोंपर प्रकाश डाला है।

पुस्तकके अन्त्यमें पटनेका भौगोलिक विवरण तथा प्राकृतिक दृश्य वर्णन सर्वसाधारणके लिये लाभदायक हैं। बल्कि पटने की यात्रा करनेवालोंके लिये तो यह पुस्तक डायरीका काम दे सकती है। इस पुस्तकके सहारे मनुष्य बिना किसीसे पूछे ताछे आनायास पटनेके दर्शनीय स्थानों पर पहुंच सकते हैं। अस्तु यतिजी महोदयका इस प्रकार की पुस्तक लिखनेका उद्योग एवं परिश्रम प्रशंसनीय, अनुकरणीय तथा श्लाघनीय है। कि मधिकं विज्ञेषु।

माघ कृ० १४ } पाण्डेय जयनारायण शर्म्मा का० व्या० तीर्थ
सं० १९८३

॥ श्रीः ॥

वक्तव्य

उस परमाराध्य अपने इष्टदेवजीकी कृपासे मैं आज आप महानुभावोंके सन्मुख पाटलिपुत्र "पटनेका इतिहास" नामकी एक छोटी परमोपयोगी पुस्तक लेकर उपस्थित हुआ हूं।

सर्वसाधारण जानते हैं, कि

प्रयोजनमनुदिश्य पामरो पिन प्रव्रर्तते

कोई भी मनुष्य किसी न किसी प्रोयजनको लेकर ही किसी कामको करनेके लिये प्रस्तुत होता है, योंही नहीं इस पुस्तकके लिखनेका मुख्य प्रयोजन यही है, कि वर्तमान पटना नगर जो किसी दिन जैन श्रावक समुदायसे प्रति पूर्ण भरा हुआ था। आज समयके फेरसे वहां जैनियोंकी संख्या वहुत ही कम है। तो भी, जैनियोंके प्राचीन कीर्तिस्तम्भ अनेक श्री जिनमन्दिर अबभी जैनियोंके अस्तित्वको सूचित कर रहे हैं। उनमें भी मन्दिर जीर्ण हो जानेके कारण गिरने योग्य हैं। उनका जीर्णोंधार करनेका विचार पटनेके जैन संघने किया है। किन्तु यह काम बहुत बड़ा है जबतक सम्पूर्ण जैन भ्रातृ वर्ग इस कार्यमें योग दान न देंगें केवल पटना निवासी जैन भाइयोंसे होना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। अतएव उक्त संघने पटनेका संक्षिप्त इतिहास लिखनेके लिये मुझे वाध्य किया कारण कि

विनजाने नही होही प्रीति
प्रीति बिना नहीं होही प्रतीती

मैंने भी इस पवित्र कार्यके करनेमें अपना पुण्योदय समझा और प्राचीन इतिहासके अनुसंधानमें लग गया। एक तो पटना ऐसाही स्थान है जहांकि एक एक विषयोंको लेकर भी लिखा जाय तो अनेक बड़ी बड़ी लम्बी चौड़ी पुस्तकें हो सकती हैं दूसरे ऐतिहासिक पुस्तक लिखनेका अपने जीवनमें प्रथम अवसर है इसलिये अनेक कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा है। यद्यपि मैं इस पुस्तकके निर्माणमें केवल मालाकार (माली) काही अनुशरण किया है तो भी इतिहासकी वाटिकामें घुस कर पुष्प चुननेमें अपनी यथा बुद्धि कोई कसर नहीं रखी है। इस पुस्तकमें सिवा कामके व्यर्थ एक भी बात नहीं रखी गयी हैं। इस पुस्तकके पढ़नेसे केवल पटने की प्राचीन अवस्था काही ज्ञान नहीं बलिक भव्य भावनायुक्त महापुरुषोंके सच्चरित्रसे पाठक आत्मकल्याण भी कर सकें इस पर भी पूर्ण ध्यान दिया गया है। किन्तु इसमें मैं कहां तक सफल हुआ हूं यह पाठक ही विचार करेंगे।

मुझे पूर्ण आशा है कि जैन समाज इस पुस्तककी अवश्य अपनावेगी तथा श्रद्धा और प्रेमके साथ इस पुस्तकको आद्योपान्त अध्ययनकर अलभ्य लाभ उठावेगी और जिस उद्देशको लेकर यह पुस्तक लिखी गयी है उसको सिद्धिमें भी पूर्ण सहायता करेगी। अस्तु मैं श्रीमान् बाबू पूर्णचन्द्रजी नाहर एम० ए० एल० एल० बी० को हार्दिक धन्यवाद देता हूं इन्होंने परिशिष्टपर्व नामकी पुस्तक प्रदान करके इस पुस्तकके निर्माणमें बहुत कुछ सहायता की है। तदनन्तर सारस्वत क्षत्रिय विद्यालयके अध्यापक श्री. पं० जयनारायण-

जी पाण्डेय काव्य व्याकरण तीर्थ महोदयका भी अतिशय कृतज्ञ हूं और धन्यवाद देता हूं जिन्होंने अपना अमूल्य समय देकरतथा असीम परिश्रम उठाकर संशोधनादिके द्वारा इस पुस्तकको सर्वाङ्ग सुन्दर बनानेमें योग दान दिया है। पुनः सर्वतो भावेन श्रीसंघ पटनाको कोटिशः धन्यवाद देता हूं, जिसने इस पुस्तकके प्रकाशित करनेमें अपना द्रव्य सदुपयोगमें व्यय करके पुण्योपार्ज्जन किया है जो कि अन्यस्थानीय संघोंके अवश्यानुकरणीय है। मैं सेठ दीपचन्दजी श्रावक तथा श्री बाबू बुधसिंहजी जौहरीको अनेक बार धन्यवाद देता हूं और उनका विशेष आभारी हूं इन महानुभावोंने ही इस पुस्तकके निर्माणमें प्रोत्साहन तथा प्रकाशनमें पूर्ण यत्न किया है बल्कि इनके ही विशेष आग्रहसे मैं इस पुस्तकके लिखनेमें प्रयत्न शील हुआ हूं।

इसके अतिरिक्त मैं उन सब महानुभावोंको हार्दिक धन्यवाद देता हूं जिनके द्वारा इस पुस्तकके लिखनेमें मुझे किसी भी प्रकारको सहायता प्राप्त हुई है।

मैंने अपनी यथा बुद्धि पटनेके जानने योग्य प्राचीन तथा नवीन ऐतिहासिक वृत्तान्त इस पुस्तकमें प्रायः संक्षेपमें अवश्य लिख दिये हैं तथापि विषयके कठिन होनेके कारण सम्भव है कि स्थल विशेषमें त्रुटी रह गयी होगी तथा पूर्ण सावधानीसे संशोधन करनेपर भी दृष्टि दोषसे कहीं कहीं भूलें रह गयी होंगी उन्हें पाठक क्षमा करेंगे एवं त्रुटियोंकी सूचना दे अनुगृहीत करेंगे जिससे द्वितीय संस्करणमें उनको सुधार दिया जाय। यदि सज्जन गण इस पुस्तकको भी पहिली पुस्तकोंके समान अपनायेंगे तो आशा है कि अग्रिम वर्षमें अन्य नवीन पुस्तक लेकर समाजके सन्मुख उपस्थित होऊंगा।

सूर्यमल यति

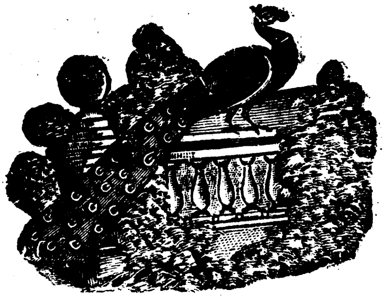

जैन गुरू पं० प्र० सूर्य्यमलजी यतिः ।

कलकत्ता ।

॥ श्री जिनाय नमः ॥

❀ वन्दे वीरम् ❀

(मङ्गला चरण)

वदनकान्तिविभाजितदिंमुख, मुनिजनोच्चय-सेवितपङ्कज । भवभृतांभवभावविभासक, विभर मे जिनवीर सुवाञ्छितम् ॥ १ ॥

मङ्गल जनक सुख शान्ति-जलके प्रभुसघन घन लाइए । करुणार्द्र हो कारुण्यकी धारा प्रभो बरसाइये कर ज्ञान सूर्योदय सुकृतिपथ ज्योतिमें प्रभु लाइए । अब ह्रास सीमा हो चुकी सुविकाश मार्ग दिखाइये ॥ १ ॥

पटनेका संक्षिप्त विवरण ।

मगध देशका शिरोभूषण पटना नामका नगर विहार प्रान्तमें भागीरथी नदीके दक्षिण तटपर अवस्थित है। प्राचीन कालमें यह नगर बहुत विस्तृत और अत्यन्त ऐश्वर्यशाली था । कवियोंकी वर्णनासे मालूम होता है, कि किसी दिन यह नगर बहुमूल्य रत्नांकित भव्य भवनों, लोचन-लोभनीय

उद्यानों, विमानोपमीय देवमन्दिरों तथा चैत्यालयोंसे विभूषित इन्द्रपुरी अमरावती एवं कुबेरपुरी अलका को भी मात कर रहा था।

यहाँके निवासी रोग-शोक, दुःख-दारिद्र्य, भय और बाधासे रहित थे एवं सदा लोकातिशायी-स्वर्गीय सुखोंका उपभोग करते थे। इसी नगरमें ब्रह्मचारी-कुलावतंश असिधारा-व्रत-पालक महात्मा स्वामी स्थूल भद्रजीका जन्म तथा महामान्य सुदर्शन सेठको केवल ज्ञान प्राप्त हुआ था। अतएव यह नगर जैनियोंके लिये परम पवित्र तीर्थ स्थान है ही; किन्तु जैनेतर वैदिक बौद्ध, सिक्ख आदि अन्यान्य सम्प्रदायवालोंका भी प्रधान धर्म स्थान है। क्योंकि कोई ऐसा धर्म या सम्प्रदाय नहीं है जिसका प्रचार यहाँ किसी दिन चरम सीमा तक न पहुँचा हो और न कोई ऐसा समाज ही है, जिसमें जाति-हितैषी, पारदर्शी, तत्व-ज्ञानी, सिद्ध पुरुषोंका आविर्भाव न हुआ हो। यही कारण है, कि प्रत्येक सम्प्रदायके ग्रन्थोंमें इस महानगरके बिषयमें प्रचुर उल्लेख मिलते हैं। सभी समाजके विद्वानोंने इस नगरकी वर्णनामें कलम उठायी और अपने जन्म तथा पाण्डित्यको सफल बनाया है। सुदूर प्राचीन कालमें यह नगर कुसुमपुर, पुष्पपुर और पाटलिपुत्रके नामसे विख्यात था; किन्तु इस समय केवल 'पाटलिपुत्र' या 'पटना' के नामसे ही प्रसिद्ध है। कोई-कोई कहते हैं, कि मुसलमानोंके शासन-कालमें इसका नाम अजिमा-बाद भी था, किन्तु इसका विशेष प्रमाण नहीं मिलता। अतएव

यह नगण्य है। वर्त्तमान समयमें इस नगरका क्षेत्र-फल...१८ वर्ग मील और जन-संख्या १६५१६२ है। यह बिहारकी राजधानी और व्यापारका स्थान है। यहाँ बहुतसे इतिहास-प्रसिद्ध प्राचीन दर्शनीय स्थान हैं, जिन्हें देखनेके लिये बहुत दूर-दूरसे लोग आते हैं। इसका विशेष विवरण 'पटनेका दृश्य—वर्णन' शीर्षक लेखमें लिखा जायेगा।

पटनेका निर्माण-काल

सुप्रसिद्ध पाटलिपुत्र (पटना) का निर्माण कब और किसने किया, यह ठीक-ठीक बतलाना कठिन ही नहीं, असम्भव भी है। क्योंकि कवि कालिदासने अपने रघुवंश नामक महाकाव्यके छठे सर्गके श्लोक २४ वें इन्दुमतीके स्वयंबरकी वर्णनामें "अनेन चेदिच्छसि गृह्यमाणं पाणिं वरेण्येन कुरु प्रवेशे प्रासाद वातायन संश्रितानां नेत्रोत्सवं पुष्प पुराङ्गनानाम्" पुष्पपुरके नामसे पटनेका उल्लेख किया है। स्वयंबरा महारानी इन्दुमतीका विवाह मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीके पितामह महाराजा अजके साथ हुआ था। इससे श्रीरामचन्द्रजीके शासन कालके पूर्वमें पाटलिपुत्रका होना निश्चय है। इसके अतिरिक्त महाभाष्यमें "अनुशोणं पाटली पुत्रम्" महाभारतमें "राजानन्दकी चाणक्यके द्वारा पराजित होनेकी

मावष्य वाणी की हुई है। दण्डिने अपने गद्यकाव्यके दशकुमार चरित्रमें "अस्ति मगध देश शेषरीभूता: पुष्पपुरी नाम नगरी" विशाखदत्तने मुद्राराक्षस नामक नाटकमें "सखे विराधगुप्त वर्णयेदानिं कुसुमपुरवृत्तान्तम्" विष्णुशर्माने हितोप-देश नामक नीति-ग्रन्थमें "अस्ति भागीरथीतीरे पाटलीपुत्रनामधेयं नगरम्" आदि भिन्न२ ग्रन्थोंमें पटनेका उल्लेख किया पाया जाता है। इससे समयका निश्चय करना असम्भव होते हुए भी यह निश्चित है, कि यह प्रसिद्ध नगर बहुत प्राचीन और परम पवित्र स्थान है। अस्तु जैन-शास्त्रानुसार पटनेका निर्माण-काल श्रीमहावीर स्वामीके समकाल है। इससे कुछ न्यूनाधिक ३००० वर्ष स्थिर किया जा सकता है। इस महानगरको मगधाधिपति राजा श्रेणिकके पौत्र राजा उदायीने बसाया था। वैदिक शास्त्र (ब्रह्माण्ड पुराण अ० १२६में) भी इस राजाका प्रमाण मिलता है:-

"उदायी भविता तस्मात् त्रयोविंश समानृपः। स वै पुरवरं राजा पृथिव्यां कुसुमाह्वयं गंगायः दक्षिणे कुले चतुस्त्रं करिष्यति।"

इसका प्रमाण इस प्रकार है !

"मगधान्तर्गत चम्पापुरी नामकी नागरीमें राजा श्रेणिकका पुत्र कुणिक राज्य करता था। यह बड़ाही दानी और धर्मात्मा

राजा हुआ। इसके उदायी नामका पुत्र हुआ, जो बल, प्रताप तथा सच्चरित्र-पालनमें उस समय अद्वितीय था। कालक्रमसे राजा कुणिकके इस असार संसारको त्यागकर स्वर्गारोहण करनेपर उसका पुत्र उदायी राज्यासनपर आसीन हुआ। अप्रतिम ऐश्वर्य प्राप्त करनेपर भी पिताकी मृत्युके शोकसे राजा उदायी सदा उदास रहता था। सम्पूर्ण राज्यमें अखण्ड आज्ञा-प्रवर्त्तन पर भी मेघाच्छन्न सूर्यके समान राजा उदायीका मुख निष्प्रभ (निस्तेज) सा रहता था। राजाकी ऐसी शोचनीय दशा देखकर एक दिन मन्त्री आदि प्रधान पुरुषोंने उनसे उदासीका कारण पूछा। राजाने आँखोंमें आँसू भरकर बड़े ही विनीत भावसे कहा,—"जब मैं इस नगरमें अपने पिताके क्रीड़ास्थानोंको देखता हूँ, तब मेरा हृदय भर आता है और मुझे बड़ी व्यथा होती है। क्योंकि मेरे हृदयमें पिताजी इस प्रकार बस गये हैं, कि जब मैं राज-सभा, राज-सिंहासन, स्नान, भोजन, शयनादिके स्थान देखता हूँ, झट स्मरण हो आता है, कि इन्हीं स्थानोंपर पिताजी मुझे अपनी गोदमें लेकर बैठते थे, स्नान-भोजन आदि करते थे। इससे मेरा हृदय समुद्रके समान उछलने लगता है और साक्षात् पिताजी देख पड़ते हैं। ऐसी अवस्थामें पिताजीके देखते हुए मैं राज-चिन्होंको धारण करूँ, यह सर्वथा अनुचित है और विनय गुणका भंग होता है अतएव इस राज-भवनमें रहकर मेरे हृदयसे शोक दूर होना एकान्त असम्भव सा प्रतीत होता है।" राजा उदायीके मुखसे इस प्रकार शोक एवं सन्तापसे

भरे हुए वचन सुन कर स्वामी हितेच्छु राज कर्मके प्रवीण मन्त्री वर्गने कहा,--"स्वामिन ! इष्टका वियोग होनेपर संसार में किसे दुःख नहीं होता ? और माता-पिता सदा किसके जीते रहते हैं ? आपके पिता श्रीकुणिक महाराजकी भी उनके पिता श्रेणिकके मरनेपर यही अवस्था हुई थी; परन्तु जब उनका चित्त राजगृह-नगरमें स्थिर न हुआ, तब उन्होंने यह चम्पा-नगरी बसायी थी और यहाँ रहकर अच्छी तरह राज्य-पालन किया था। इस-लिये आपका भी यदि यहाँ रहकर शोक दूर न हो, तो आप भी कहीं अच्छी जगह तलाश कराकर नवीन नगर बसाइये और वहीं राजधानी बनवाइये। यह सुनकर राजा उदायीने ऐसा ही किया नैमित्तियों (ज्योतिष विद्या जाननेवालों) को बुलाकर आज्ञा दे दी कि नवीन नगर बसानेके लिये कहीं अच्छी भूमि देखो। राजा उदयीको आज्ञा पाकर नैमित्तिक प्रदेश देखनेके लिये यत्र-तत्र जंगलोंमें निकल पड़े। अनेक स्थानोंको देखते हुए वे गंगा नदीके किनारे एक रमणीय स्थानमें जा पहुँचे। उन्होंने वहांपर पुष्पोंसे लहलहाया सघन छायावाला एक 'पाटलि'—वृक्ष देखा। उस मनोहर वृक्षको देखकर वे बड़े प्रसन्न हुए और अपने विद्या-बलसे विचार किया, तो उनके ध्यानमें आया, कि यह नवीन नगर बसाने-योग्य अति श्रेष्ठ भूमि है। यहाँ राजधानी बनानेसे राजाको स्वयमेव ही सम्पदाएं प्राप्त होती रहेंगी। सब नैमि-त्तिकोंने मिलकर यही निर्णय किया और राजाके पास जाकर कहा,—"राजन्! हमने बहुत स्थान देखें; परन्तु गंगा-नदीके

तटपर एक ऐसा रम्य स्थान है, कि यदि वहाँ नगर बसाया जाये, तो राज्यकी वृद्धि होगी और प्रजाको भी सर्व प्रकारका सुख होगा।" उन्हीं नैमित्तिकोंमेंसे एक वृद्ध नैमित्तिकने पाटलि—वृक्षकी उत्पत्तिके विषयमें निम्नलिखित (उपाख्यान) कथाका वर्णन किया।

पाटलि वृक्षकी उत्पत्ति तथा अन्निका पुत्राचार्यका चरित्र।

इसी मगध-देशमें मथुरा नामके दो नगर थे; एक उत्तर मथुरा और दूसरा दक्षिण मथुरा कहलाता था। ये दोनोंही नगर बड़े रम्य तथा समृद्ध थे। उत्तर मथुरामें देवदत्त नामका एक ऐश्वर्यशाली बणिक रहता था। एक दिन वह यात्राके निमित्त दक्षिण मथुरामें गया। यहाँ भी जयसिंह नामका एक बणिक रहता था। यह धन-धान्यसे युक्त प्रसिद्ध व्यक्ति था। देवदत्तके वहाँ कुछ दिन रह जानेपर उसकी जयसिंहके साथ गाढ़ी मित्रता हो गयी। जयसिंहके अन्निका नामकी एक परम सुन्दरी कुमारी बहिन थी। एक दिन जयसिंहने देवदत्तको भोजन करनेके लिये अपने यहाँ निमन्त्रित किया। दोनों मित्र एक साथ ही भोजन करनेके लिये अपने-अपने आसनपर बैठे। उनके बैठ जानेपर अन्निका सुन्दर-सुन्दर वस्त्र तथा बहुमूल्य अलङ्कारोंसे अलंकृत हो अपने भाई तथा उनके मित्र दोनोंके थालमें भोजन परोसकर

आप पंखा करने लगी। उस समय अग्निकाका अलौकिक सौन्दर्य देखकर देवदत्तका मन इस प्रकार विवश हुआ, कि भोजनका स्वाद भी कुछ मालूम नहीं हुआ; किन्तु मित्रतामें किसी प्रकारका फ़र्क न आ जाये, इसलिये वह अपने मनोगत भावको छिपाकर स्थिरतासे जीमता रहा। भोजन कर लेनेके बाद जय सिंहसे रुखसद पाकर देवदत्त अपने मकानपर चला गया; परन्तु उसका मन मयूर वहीं नृत्य करता रहा।

दूसरे दिन देवदत्तने अपने एक वृद्ध नौकरको जयसिंहके पास अग्निकाके साथ विवाह सम्बन्धका प्रस्ताव करनेको भेजा। उस समय वृद्ध नौकरने वहाँ जाकर बड़े नम्र तथा गम्भीर बचनोंसे अग्निकाका विवाह देवदत्तके साथ करनेके लिये जय-सिंह से कहा। जयसिंह उसकी बात सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और बोले,—"देवदत्तको मैं अच्छी तरह जानता हूँ। वह सर्व कलाओंका जानने वाला रूप-गुण-सम्पन्न और कुलीन व्यक्ति है। ऐसा वर मिलना बड़े ही सौभाग्यकी बात है; किन्तु दुःख यही है, कि वह परदेशी है और मेरी बहिन मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्यारी है। उसका क्षणभरके लिये भी अलग होना मेरे लिये असह्य है। देवदत्तके साथ विवाह करदेनेपर मुझे वाध्य होकर देवदत्तके साथ उसे भेज देना पड़ेगा; यह मुझसे नहीं हो सकता। अतएव यदि देवदत्त सदाके लिये मेरे घर रहना मंजूर करें, तो मैं खुशीसे उनके साथ अपनी बहिनका विवाह कर दे सकता हूँ। नौकरके द्वारा देवदत्तको यह बात मालूम हुई। उसने

जयसिंहके घरपर रहना मंजूर कर लिया। जयसिंहने भी बड़ी धूमधामसे अपनी बहिन "अन्निका" का देवदत्तके साथ विवाह कर दिया।

विवाहके बाद वे दोनों दम्पति परस्पर प्रेममें लीन हो, सांसारिक सुखोंको भोगते हुए बहुत समय दक्षिण मथुरामें ही व्यतीत किया। एक दिन अचानक देवदत्तके माता-पिताओंका भेजा हुआ एक पत्र आया, जिसे पढ़कर देवदत्तके नेत्रोंसे अश्रुधारा बहने लगी, किन्तु कहीं अन्निका देख न ले, इसलिये रुमालसे अपने नेत्रोंको पोंछ लेते थे। तो भी अन्निका अपने पतिके उदास मुख मण्डलको देखकर ताड़ गयी, कि आज कुछ न कुछ प्राण प्यारे पतिको दुःख अवश्य हुआ है। अतएव वह आप भी अश्रुपूर्णनेत्रोंसे कहने लगी,—"स्वामिन्! आज आपकी ऐसी दशा क्यों है? यह पत्र किसका है। यह पत्र भी कोई साधारण नहीं, मालूम पड़ता; क्योंकि इसके देखनेसे आपकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह रही है। और वह आँसू भी हर्षके नहीं, खेदके देख पड़ते हैं। अतएव आप शीघ्र कहिये, कि इसमें क्या रहस्य है?" यह सुन देवदत्तने कुछ उत्तर नहीं दिया; बल्कि मुँह नीचा कर लिया। इसपर अन्निकाने और भी उत्कण्ठासे देवदत्तके हाथसे उस पत्रको ले लिया और स्वयं बाँचना शुरु किया। उस पत्रमें लिखा था:—

"आवां हि चक्षुर्विकलौ, चतुरिन्द्रियतांगतौ।
जराजजरसर्वांगावासन्नयमशासना॥

आयुष्मन्नपिजीवन्तौकुलीनस्त्वंपदृक्षसे।
तदेहूयुद्रापयदृशावावयोरुदतोसतोः ॥

अर्थात्—तेरे वियोगसे हम चक्षुविहीन हो, चौरिन्द्रियपनको प्राप्त हो गये तथा बुढ़ापेसे निर्बल होकर यमराजके समीप आ गये हैं। हे आयुष्मन्! हे कुलीन! यदि तू हमें जीता हुआ देखना चाहता है, तो शीघ्र आकर हमारे नेत्रोंको शान्त कर।"

अम्बिका पत्रको बाँचकर बोली,—स्वामिन्! आप इस ज़रासी बातपर इतने शोकातुर क्यों हो रहे हैं? आप इसकी कुछ भी चिन्ता न करें। मैं अभी जाकर अपने भाईको समझा देती हूँ। आपका मनोरथ पूर्ण हो जायेगा।

यह कहकर अम्बिका चली गयी और शीघ्रही अपने भाईके पास पहुँचकर बोली,—"भाई! आप विवेकी होकर ऐसा क्यों कर रहे हैं? आपका बहनोई अपने कुटुम्बके बियोगमें दुखी हो रहा है और मैं भी अपने सास-ससुरके दर्शन किया चाहती हूं। इसीलिये आप उन्हें अपने घर जानेकी आज्ञा दे दीजिये। यदि वे अपनी प्रतिज्ञासे बँधे रहनेके कारण न भी जायेंगे, तो मैं अवश्य जाऊँगी।" जयसिंहने जब अम्बिकाका ऐसा बचन सुना तब किसी प्रकार अपने मनको धैर्य देकर उसने अपने बहनोईको घर जानेकी आज्ञा दी। आज्ञा पाकर देवदत्तने भी बड़ी प्रसन्नताके साथ अपनी प्राण प्यारी अम्बिकाको साथ लेकर उत्तर-मथुराकी यात्रा की। अम्बिका उस समय आसन्न प्रसवा थी। अतएव मार्गमें ही समस्त शुभ लक्षणोंसे युक्त एक दिव्य

पुत्र-रत्न उससे उत्पन्न हुआ। उस पुत्रको देखकर दोनों दम्पतीके हर्षका पार न रहा। देवदत्तने विचारा कि घर जानेपर इस नव जात पुत्रका नाम रखा जायेगा; पर उसके साथ के लोग उसे अन्निका-पुत्र कह कर पुकारने लगे। थोड़े दिनोंमें देवदत्त सकुशल अपने नगरमें पहुँचा। और माता-पिताके सामने विनीत भावसे खड़ा होकर बोला,—"यह आपकी पुत्रवधू तथा यह शिशु आपका पौत्र है।" यह सुनकर उसके पिता परम प्रसन्न हुए, उन्होंने लड़केका मस्तक चूमा और बड़े हर्षके साथ पौत्रका नाम 'सन्धीरण' रखा यद्यपि उसका नाम सन्धीरण रखा गया; पर पूर्व अभ्यासके कारण लोग उसे अन्निका पुत्र ही कहते थे। वह बालक बचपनसे ही बड़ा सुशील और सच्चरित्र था। और कभी कभी संसारकी असारतापर भी विचार किया करता था। युवावस्था प्राप्त करते ही संसारसे उसका मन विरक्त हो गया। एक दिन उसने अपने माता-पिता आदिसे आज्ञा लेकर श्रीजयसिंहाचार्यके पास जाकर दीक्षा ग्रहण कर ली। थोड़े ही दिनोंमें उस महात्माने निरतिचार चारित्रसे अपने संचित कर्मरूप काँटेको चूरकर तपरूप अग्निसे कर्मरूप मलको भस्मकर दिया और श्रुत पारग तथा ज्ञान-दर्शन चारित्रमें परिणत हो गया। इसके बाद गुरु महाराजने भी इन्हें योग्य समझ कर आचार्य पदसे विभूषित किया। एक दिन श्रीअग्निका पुत्राचार्य विहार करते हुए गंगा तीरपर "पुष्पभद्र" नामक नगरमें पहुँचे। उस नगरमें पुष्पकेतु नामका राजा राज्य करता था। उसकी रानीका नाम पुष्पवती

था। वह बड़ी ही साध्वी एवं पतिपरायणा थी। कुछ दिनोंके बाद पुष्पवतीके गर्भसे एक साथ दो सन्तानें पैदा हुईं, जिनमें एक लड़का और एक लड़की थी। पुष्पकेतुने बड़े हर्षसे दोनो सन्तानोंका नामकरण संस्कार किया। लड़केका नाम 'पुष्पचूल' और लड़कीका नाम 'पुष्पचूला' रखा। ये दोनों शिशु चन्द्रकलाके समान दिनोंदिन बढ़ने तथा परस्पर असीम प्रेमसे रहने लगे। इन दोनोंके असीम प्रेमको देखकर राजाने विचारा कि यदि मैं अन्यत्र इनका विवाह-सम्बन्ध कराकर वियोग कराऊंगा; तो ये अवश्य वियोगको सहन न कर प्राण त्याग देंगे। अतएव यही उचित है, कि इन दोनोंमें ही विवाह-सम्बन्ध स्थापित करा दें और उन्हें अपने ही घर रखें। स्नेहमें डूबे हुए राजाने कृत्याकृत्यका कुछ भी विचार न कर अपने पुत्र-पुत्री 'पुष्प चूल' और 'पुष्प चूला' का परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध करा दिया। पुष्पकेतुकी रानीने उसे बहुत मना किया, कि आप ऐसा अनुचित कार्य न करें; किन्तु राजाने उसकी एक भी न सुनी। विवाह हो जानेके बाद वे दम्पती नितान्त रागवान् होकर परस्पर गृहस्थ धर्मका अनुभव करने लगे। कुछ दिनोंके बाद 'पुष्पकेतु' परलोकका अतिथि हो गया। पीछे रानीने अकृत्यसे निवारण करनेके लिये पुष्पचूल और पुष्पचूलाको बहुत कुछ समझाया; किन्तु राज्याभिषेक हो जानेके कारण 'पुष्पचूल' स्वतन्त्र हो गया था एवं पुष्पचूलाके साथ उसका अत्यन्त राग था; इसलिये उसने अपनी माताका कहा न माना। जब पुष्पवतीसे यह अकृत्य

देखा न गया, तब उसने किसी जैन साध्वीसे दीक्षा ग्रहण करली और घोर तपस्याओंके द्वारा अपना शरीर त्याग कर देवलोकमें जा बसी। कुछ दिनोंके बाद पुष्पवतीका जीव-देवताने अवधि-ज्ञानसे अपने पुत्र-पुत्रीको अकृत्यमें जुड़े देखकर मनमें विचारा, कि ये इन अकृत्योंसे घोर नरकको वेदनाओंको सहेंगे। यह विचार कर उस देवताने पुष्पचूलाको स्वप्नमें नरक तथा स्वर्गका दृश्य दिखाना शुरू किया, कि इन दृश्योंको देख वे अकृत्योंसे बचें और दुर्गतिके भागी न बनने पावें। इन स्वप्नोंको देख, पुष्पचूलाने आश्चर्यसे चकित हो, अपने स्वप्नका वृतान्त अपने पतिसे कहा। एक दिन राजाने अन्निका पुत्राचार्यको अपनी सभामें बुलवाया और उनसे स्वर्ग और नरकका स्वरूप पूछा। अन्निका पुत्रा-चार्य्यने यथार्थ वैसाही स्वर्ग और नरकका स्वरूप वर्णन किया, जैसा कि पुष्प चूलाने स्वप्नमें देखा था। पूष्पचूलाने हाथ जोड़कर आश्चर्यसे पूछा,—जैसे स्वर्गके सुख मैंने स्वप्नमें देखे हैं, वे किस कर्मके प्रभावसे प्राप्त हो सकते हैं?"

गुरु महाराज बोले,—"भद्रे! सुदेव सुगुरु और सुधर्मके प्रति श्रद्धा होने तथा जैन-धर्मकी दीक्षा ग्रहण करनेसे स्वर्गापवर्ग सुख मिलते हैं।"

इस बातको सुनकर पुष्पचूलाको संसारसे वैराग्य हो गया अतएव हाथ जोड़कर वह गुरु महाराजसे बोली,—

"भगवन्! मैं अपने पतिसे पूछकर आपके श्रीचरणोंमें दीक्षा ग्रहण करूँगी।"

आचार्य महाराज 'तथास्तु' कहकर अपने स्थानपर चले गये। और रानी पुष्पचूलाने अपने पतिके पास जाकर दीक्षा ग्रहण करनेका आग्रह किया। राजाने कहा,—

"एक तरहसे मैं तुम्हें दीक्षा ग्रहण करनेकी आज्ञा दे सकता हूँ, अन्यथा नहीं,—वह यह है, कि दीक्षा लेकर हमेशाही तुम मेरे घर अन्न-जल ग्रहण करो, दूसरेके घर न माँगो, तो मैं आज्ञा दूँ।"

रानीने यह बात मंजूर कर ली और बड़े हर्षसे अग्निका पुत्राचार्यके पास जा दीक्षा ग्रहण की। इसके बाद पुष्पचूला गुरुमहाराजकी दी हुई शिक्षाको भलि-भाँति ग्रहण करती हुई गुरु महाराजकी पर्युपासना करने लगी। एक दिन मुक्ति सम्पदाका निदान भूत केवल ज्ञान पुष्पचूलाको प्राप्त हो गया; किन्तु केवल ज्ञान होनेपर भी वह गुरु महाराजकी वैसी ही भक्ति करती रही, जैसी पहले करती थी। केवल-ज्ञानको धारण करनेवाली साध्वी पुष्पचूला गुरु महाराजके बिना कहे, उनकी इच्छाके अनुसार भोजनादिका प्रबन्ध कर दिया करती थी। इससे गुरु महाराज बहुत ही आश्चर्य किया करते थे। एक दिन पुष्पचूला वृष्टि होते समय गोचरी लेकर आ रही थी। जब वह उपाश्रयमें आ गई, तब गुरु महाराजने देखकर कहा,—"भद्रे श्रुतज्ञानको पढ़कर एवं जान कर भी तूने यह क्या किया? बरसातमें साधु-साध्वीको मकानसे बाहर निकलनेकी मनाई है; इसलिये तुझे ऐसा करना उचित न था।"

पुष्पचूला बोली,—"महाराज ! जिस रास्ते अचित (अपकाय) पानी पड़ता था, उस रास्तेसे मैं गौचरी लेकर आयी हूँ । इसलिये जिनागमके अनुसार कोई अनुचित नहीं; क्योंकि उसमें इस बातका प्रायश्चित भी नहीं है।"

सूरीश्वर बोले,—"भद्रे ! अमुक रास्ते सचित (अपकाय) पानी और अमुक रास्ते अचित (अपकाय) पानी बरसता है, यह ज्ञान तुझे किस तरह हुआ ? कारण, कि यह बात बिना अतिशय केवल ज्ञानके नहीं मालूम हो सकती ।"

पुष्पचूलाने कहा,—"महारज ! मुझे आपकी कृपासे केवल ज्ञान प्राप्त हुआ है। इसीसे मैं सब कुछ जानती हूं।"

यह सुनकर आचार्य महाराजके मनमें केवल ज्ञान प्राप्त करनेकी लालसा उमड़ आयी और वे सोचने लगे कि देखे, मुझे इस भवमें केवल ज्ञानकी प्राप्ति होती है या नहीं ?

पुष्पचूला इस बातको समझ गयी, और बोली,—"हे मुनिपुङ्गव ! आप अधीर न हों गंगा नदी उतरते हुए आपको भी इसी भवमें केवल ज्ञान प्राप्त होगा ।

यह सुनकर आचार्य महाराज गंगा उतरनेके लिये कुछ लोगो के संग चल पड़े। वे जब नावपर सवार हुए तो वे जिस ओर बैठे थे, उसी ओरसे नाव डूबनेको हो जाती थी। इसीलिये वे उन सब आदमियोंके बीचमें बैठ गये। तब तो सारी नाव ही डूबने लगी। यह देखकर उन सब लोगोंने विचारा कि इस साधु महारजके ही कारण नाव डूब रही है। अतएव इस महात्माको

ही गंगाकी भेंट कर दो। यह सोचकर उन लोगोंने आचार्य महाराजको गंगामें फेंक दिया। उस समय जलके भीतर एक शूली खड़ी हो गयी और उसपर आचार्य महाराजका शरीर लटक गया। आचार्य महाराज शरीरकी चिन्ता छोड़, (क्षपक श्रेणी क्षमा भाव) पर आरूढ़ हो गये। और (अन्तकृत) अन्त समय केवल-ज्ञान लाभ करके शुक्ल ध्यानमें स्थित हो निर्वाणको प्राप्त हो गये। अग्निका पुत्राचार्यका शरीर जल जन्तुओंने छिन्न-भिन्न कर दिया और उनकी खोपड़ी जल-प्रवाहसे बहती हुई गंगाके किनारे आ लगी। एक दिन दैवयोगसे उस खोपड़ीके अन्दर पाटलि वृक्षका बीज आ पड़ा और वह बीज खोपड़ीके अन्दर ही अंकुरित हो गया। आज वही वृक्ष इस विशालताको प्राप्त हो गया है, जिसे देखते ही मनुष्योंका चित्ताकर्षित होता है तथा केवल ज्ञानी महात्माकी खोपडीमें उगनेसे यह वृक्ष बड़ा पवित्र है। इसलिये यहाँ नगर बसाओ। आपको सब प्रकारसे कुशलता और समृद्धी प्राप्त होगी।

इस (उपाख्यान) कथाको सुनकर राजाने बड़े हर्षके साथ नैमित्तिकोंका कहना मंज़ूर किया। और उन्हें मान दान देकर सभासे विदा किया। इसके बाद शीघ्रही नौकरोंको उस जगह नगर बसाने योग्य ज़मीन नाप ठीक करनेकी आज्ञा दी। उन्होंने नौकरोंको अच्छी तरह समझा दिया, कि ज़मीन इस तरह ठीक करो, कि जिसमें वह पाटलि-वृक्ष नगरके ठीक बीचोबीचमें आ

जाये। नौकरोंने राजाकी आज्ञाके अनुसार जमीन नापकर उसमें ऐसा मनोहर नगर बसाया, जो अपनी सौन्दर्य-सम्पत्तियोंसे स्वर्गको भी मात कर रहा था। नगरका मध्य भाग देवविमान को तिरस्कृत करनेवाले देव-मन्दिरों, इन्द्रकी सभाको लज्जित करनेवाले राजमन्दिरों और अन्य भाग पुण्यशालाओं, दानशालाओं, पाठशालाओं और औषधालयोंसे अकुलंत एवं विभूषित था। इस अनुपम विशाल नगरका नाम विशाल पाटलि-वृक्षके आश्रयमें होनेके कारण "पाटलि-पुत्र" रखा गया। राजाने एक शुभ मुहूर्तमें अपनी प्रजाके साथ उस नगरमें प्रवेश किया। और पितृ-वियोगको भूलकर सुख पूर्वक राज्य करने लगा। राजा बड़ा ही देवगुरुभक्त, प्रजापालक तथा प्रतापी था। उसके सामने अन्य राजन्यवर्ग अस्त प्राय हो गये। राजा उदायीके प्रचण्ड शासनसे दूसरे छोटे-छोटे राजाओंकी नाकमें दम आ गया था; इसलिये सब लोग राजा उदायीसे द्वेष रखने लगे। एक दिन उदायीने किसी अक्षम्य अपराधपर एक खण्डिये राजाका राज्य छीन लिया। और उसे अपने राज्यसे निकाल दिया। वह खण्डिया राजा अपने परिवारके साथ वहाँसे भाग निकला। वह तथा उसका परिवार तो कालक्रम वश परलोक सिधार गये; किन्तु उसका एकमात्र पुत्र बच गया, जो उज्जैनमें आकर उज्जैनाधिपतिकी सेवा करने लगा। उस समय उज्जैनाधिपति भी राजा उदायीके विरुद्ध था। यह बात उस राजपुत्रको मालूम हो गयी। मौका पाकर उसने उज्जैनाधिपतिसे कहा, कि यदि

आपकी सहायता हो, तो मैं उदायीको खाकमें मिला दूँ। यह सुनकर उज्जैनका राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उस राजपुत्रसे कहा,—कि यदि तू यह काम कर सके, तो फिर पूछना ही क्या है? किन्तु मेरी समझमें तो यह बिल्कुल असम्भव है। क्योंकि ऐसा कौन है, जो राजा उदायीके प्रतापानलमें अपने आप शरीर-रूप तृणकी आहुति देनेका साहस करे? तो भी यदि तू कहता है, तो मैं तेरी सहायता करनेको हर प्रकारसे तैयार हूँ। इस प्रकार वह राज-पुत्र उज्जैनाधिपतिकी अनुमति पाकर पाटलि-पुत्रनगरमें आकर उदायी राजाके यहाँ (भृत्य) नौकरीका काम करने लगा। जबसे उसने नौकरी करनी शुरू की, तभीसे वह बराबर अपने (अभीष्ट) मनो इच्छाकी सिद्धिकी चेष्टा करता रहा, किन्तु राजा उदायीको एकान्तमें पाना तो दूर रहा,—उनके दर्शन भी नहीं हुए। अन्तमें जब इस प्रकारसे अपना मनोरथ पूर्ण होते न देखा, तब उसने दूसरे उपायका अवलम्बन किया। उसने देखा कि राजाके अन्तःपुरमें आने जानेके लिये जैन मुनियोंको कोई रुकावट नहीं है। अतएव उस धूर्त्त राज-पुत्रने अन्दर प्रवेश करनेके लिये जैन साधुओंके स्वामी आचार्य महाराजके पास जाकर बड़ाही भक्ति-वैराग्य दिखाकर दीक्षा ग्रहण की। राजाउदायी अष्टमी, चतुर्दशी आदि पर्वतिथियोंमें पोषध व्रत किया करते थे। और उस दिन आचार्य महाराज उदायीको धर्म सुनाया करतेथे। एक दिन राजा उदायीने पौषध किया था। आचार्य महाराजने सन्ध्याके समय राज-पुरीमें जानेका विचार

किया। आचार्य महाराजको रात्रिमें राजाके पास रहना पड़ता था। इसलिये जब कभी जाते, तो अपने साथ सबसे अधिक विश्वास पात्र साधुको भी ले जाते थे इस बार उन्होंने उस नये साधु (धूर्त्त राज-पुत्र) को ही सबसे अधिक विश्वासी समझा क्योंकि उसका वैराग्य और क्रिया देखकर उन्हें उसपर पूरा विश्वास हो गया था। अतएव उन्होंने उसे ही साथ चलनेको कहा। आचार्य महाराजका वचन सुन वह मायाचारी श्रमण मन-ही-मनमें परम प्रसन्न हुआ भक्तिका नाट्य दिखाता हुआ आचार्य महाराजकी और अपनी उपधि उठाकर आचार्य महाराजके साथ हो गया। आचार्य महाराजके राजकुलमें पहुँचनेपर प्रतिक्रमण आदि किये जानेके बाद राजा उदायी बहुत देरतक उनसे धर्म चर्चा करता रहा। जब रात अधिक बीत गयी, तब आचार्य महराज और राजा उदायी दोनों अपने-अपने (संस्थारक) बिछौनेपर सो गये, किन्तु उस धूर्त्त साधुको निद्रा नआयी क्योंकि

"निद्रापि नैति भीतेव रौद्रध्यानवतां नृणाम्।"

जब आधी रात बीत गयी, तब उस दुरात्मा साधुने अर्थात् रजोहरण (ओघा) में से एक तीक्ष्ण छुरी निकाली और उसीसे राजा उदायीका गला काट डाला। और पहरे दारोंसे जंगल जानेका बहाना करके राजकुलसे बाहर निकल गया। थोड़ी देरके बाद जब आचार्य महाराजकी नींद खुली, और उन्होंने इस महान अकृत्यको देखा, तब उनका हृदय भर आया। उन्होंने कातर दृष्टिसे साधुकी ओर देखा; किन्तु उसका तो वहाँ पर

पता भी नहीं था; केवल उसके (संस्थारक) बिस्तरेके पास लहू से भरी हुई एक छोटी सी तेज़ छुरी पड़ी हुई थी। यह देखकर उनको विश्वास हो गया, कि यह पैशाचिक कार्य उसी साधुका है इससे वे चिन्ताके समुद्रमें डूब गये। आचार्य महारज सोचने लगे, कि मैंने जो उस दुष्टको दीक्षा दी तथा विश्वास करके उसे राजकुलमें लाया, यही मेरी भूल हुई। अतएव इसके लिये मैं ही दोषी हूँ। अब मेरे लिये यही उचित है, कि आत्मत्याग करके प्रवचनका जो उड्डाह होनेवाला है, उसकी रक्षा करूं; क्योंकि प्रातःकाल इस अदर्शनीय दृश्यको देखकर सब लोग इस कुकृत्यका कलङ्क मेरे ही ऊपर रखेंगे। ऐसा सोचकर आचार्य महाराजने, उसी छुरीको अपनी गर्दनपर भी फेर ली, जिसने राजा उदायीके प्राणोंका अपहरण किया था। सच है, महात्मा मानकी रक्षाके लिये अपनी आत्मा तक दे डालते हैं। प्रातःकाल होनेपर शय्यापालक जब पौषधशालामें आये और उस अमङ्गलको देखा, तब उनका शरीर काँप उठा। उन्होंने चिल्लाकर लोगोंको पुकारा। फिर तो कहना ही क्या था? शीघ्रही सब के सब राज पुरुष वहाँ आ इकट्ठे हुए। राजा उदायी और आचार्य महाराजकी लाशें देखकर सबका ही कलेजा काँप उठा, तथा सबने मिलकर यही निश्चय किया, कि इस मर्मभेदी अकाण्डको उसी छोटे मुनिने किया है। पीछे यह बात सर्वत्र फैल गयी सम्पूर्ण राजकुलमें हाहाकार मच गया। कोई तो उस साधुके विषयमें अनेक तर्क-वितर्क करने और उस दुष्टको भला बुरा कहने

लगे, कोई आचार्य महाराज और राजाका गाढ़ धर्म-प्रेम, पारस्परिक प्रीति और विश्वासका स्मरण करके अश्रुधारा बरसाने लगे। थोड़ी देरको चारों ओर निस्तब्धता (चिन्ता) सी छा गयी। पीछे मन्त्री-सामन्तोंने उस पापात्माको पकड़नेके लिये चारों तरफ घुड़सवार भेजे, परन्तु उसका कहीं भी पता न लगा। शोक विह्वल मन्त्रीवर्ग राजा और आचार्य महाराजकी (और्ध्वदैहिक क्रिया) अग्निसंस्कार करनेके बाद धर्म-पूर्वक शासन चलाने लगे। राजा उदायीको मारकर वह दुष्ट शीघ्रही उज्जयिनी नगरीमें चला गया और उज्जैनाधिपतिसे उदायीके मरनेका सब हाल कह सुनाया यह सुनकर अवन्तीपतिने दयाकी दृष्टिसे उसकी ओर देखकर कहा,—"अरे दुष्ट! जब तू इतने दिनोंतक दीक्षा ग्रहण करके रात-दिन समता-प्रधान साधुओंके पास रहकर और हमेशा धर्मोपदेश सुनकर भी शान्त न हुआ, तथा ऐसा दुष्कर्म करनेसे पीछे न हटा, तब तू मेरा क्या भला करेगा? जा, मुँह काला करके मेरे राज्यसे निकल जा।" इस प्रकार कह उज्जैनाधिपतिने तिरस्कार पूर्वक उसे अपने राज्यसे निकाल दिया।

राजानन्द तथा उनके मन्त्री कल्पकका विवरण।

राजा उदायीके स्वर्गारोहण करनेके बाद न तो उनके कोई सन्तान थी, न कोई निकट सम्बन्धी ही था, जो उनका उत्तराधिकारी बनाया जाता; अतएव राज्य कायम रखनेके लिये पाँच दिव्य राजकुलमें फिराये। पंच दिव्य इन्हें कहते हैं:—पट्ट हस्ती प्रधान अश्व, जलकुम्भ, छत्र और चामर। (उस समयकी यह प्रथा थी, कि जब कभी ऐसी सन्देह युक्त टेढ़ी समस्या उपस्थित होती तब पाँच दिव्य छोड़े जाते और वे दिव्य वस्तुएँ जिसे स्वीकार करतीं, उसीको यह कार्य-भार सौंपा जाता था। इसी नियमके अनुसार पांच दिव्य फिराये गये थे।) ज्योंही वे नगरमें फिर रहे थे, त्योंही वे सामनेसे पालकीमें बैठा हुआ एक मनुष्य आता दिखाई दिया। उसे देखकर पट्ट हस्तीने उसके मस्तकको जल-पूर्ण कुम्भसे अभिषेक किया और सूँड़से उठाकर उसे अपने मस्तकपर बैठा लिया। और दिव्योंने भी अपना-अपना कार्य दिखलाकर उसे स्वीकार किया। जैन शास्त्रके अनुसार यह भाग्यवान् पुरुष वेश्याकी कुक्षिसे जन्मा हुआ नापितका पुत्र था और इसका नाम नन्द था। उसने एक दिन स्वप्नमें पाटलिपुत्र नगरको अपनी आँखोंसे (वेष्ठित) लिपटा हुआ देखा। नींद खुलने पर वह स्वप्नोंपाध्याके पास गया और स्वप्नके विषयमें पूछा।

उपाध्यायने उस उत्तम स्वप्नका वृत्तान्त सुन बड़ी प्रीति पूर्वक नन्दको अपनी लड़की ब्याह दी और उसको वस्त्राभरणोंसे अलंकृत करके पालकीमें बैठाकर, नगर-यात्रा करानेके लिये निकाला था, कि दिव्योंसे मुलाक़ात हो गयी। (किन्तु अन्यान्य शास्त्रोंके मतसे नन्द शुद्ध क्षत्रिय वंशका राजा था।) पञ्च-रत्न दिव्योंके स्वीकार कर लेनेपर मन्त्रियों तथा नगर वासी महापुरुषोंने मिल कर सानन्द 'नन्द' को महोत्सव पूर्वक राज्याभिषेक किया। भगवान् महावीर स्वामीके निर्वाणसे ६० वर्ष बाद राजा उदायीकी राजधानीका मालिक यह पहला नन्द हुआ।

उसी नगरमें कपिल नामका एक ब्राह्मण रहता था, उसके एक बालक पैदा हुआ। नाम संस्कारके दिन कपिलने अपने पुत्रका नाम कल्पक रखा। जब वह बालक विद्याभ्यास करनेके योग्य हुआ, तब कपिलने उसे विद्याभ्यास कराना शुरू किया। प्रज्ञावान् होनेसे कल्पक थोड़ेही समयमें शास्त्रज्ञ तथा दक्ष हो गया कल्पक बचपनसे ही जितेन्द्रिय और नेकनियत था। अतएव सर्वसाधारण मनुष्योंकी दृष्टिमें वह प्रामाणिक गिना जाता था। कुछ दिनके बाद माता-पिताके स्वर्गवास होनेपर कल्पक सर्व प्रकारसे स्वतन्त्र हो गया। उस समय पाटलिपुत्रमें कल्पक के समान विद्वान् गुणवान और दक्ष दूसरा कोई न था। इसलिये वह समस्त नगर वासियोंका पूज्य था। एक दिन राजा नन्दने कल्पककी बड़ी प्रशंसा सुनी। अतएव राजाने पण्डित और बुद्धिमान समझकर कल्पकको राज-सभामें बुलाया तथा

प्रधान मन्त्रीका पद ग्रहण करनेकी उससे प्रार्थना की। कल्पक बड़ा सन्तोषी तथा निर्लोभी था। अतः उसने राजाकी प्रार्थना सुनकर यह उत्तर दिया, कि महाराज! मैं अपने निर्वाह मात्रके सिवा अधिक परिग्रह रखना मनसे भी नहीं चाहता। अतएव मैं अमात्य पदवी ग्रहण नहीं कर सकता। इस प्रकार राजा नन्दकी (अवज्ञा) नाफरमानी करके वह अपने घर चला गया। कल्पकका इस प्रकारका उत्तर सुन, राजा नन्दका चित्त क्रोधसे भर गया; किन्तु कल्पकको प्रधान मन्त्री बनानेकी लालसा उसके मनसे दूर न हुई। इसके लिये वह नाना प्रकारके प्रपञ्च रचने लगा, जिससे वह इस पदको स्वीकार कर ले। दैवात् एक दिन कल्पक नन्दके प्रपञ्चमें फँस गया। और क्रोधके आवेशमें एक धोबीकी हत्या कर डाली। पीछे राजदण्डके भयसे स्वयं ही राजसभामें जाकर उपस्थित हुआ। उस समय सभाके सदस्य भी प्रायः उपस्थित न थे। इस प्रकार बिना बुलाये कल्पक राजसभामें आया देख, राजा नन्द बहुत प्रसन्न हुए और शिष्टाचारके बाद फिर उसे प्रधान मन्त्रीका पद ग्रहण करनेका आग्रह करने लगे। कल्पक बड़ा दक्ष और अवसरका जानकार था। अतएव उसने उसी वक्त राजाका कहा मान लिया तथा प्रधान मन्त्रीकी मुद्रा धारण कर राजा नन्दके बराबर बैठ गया। राजाने कल्पकका बड़ा आदर किया और उस दिनसे उसको गुरुके समान सकझने लगा। राजाके मनमें बहुत दिनोंसे कई बातोंकी शंकायें थीं। इन शंकाओंको निवारण करनेवाला अब तक कोई पण्डित उसे

नहीं मिला था। अब इस अवसरको प्राप्त करके राजा अपनेको धन्य समझता हुआ उन शंकाओंके बारेमें कल्पकसे पूछने लगा और कल्पक भी अपनी योग्यताके अनुसार राजाकी शंकाओंको (निर्मूल)दूर करने लगा। इस प्रकार दोनोंमें हार्दिक मैत्री हो गयी राजा और मन्त्री दोनों परस्पर आनन्द अनुभव करते हुए सुख पूर्वक रहने लगे। कल्पकके मन्त्री पद स्वीकार करनेपर राजा नन्दकी राज्य लक्ष्मी दिन पर दिन बढ़ने लगी और उनका प्रताप दसों दिशाओंमें फैल गया। सारांश यह, कि कल्पकके मन्त्री पद पर आसीन होनेपर राजा और प्रजा दोनों सुखी तथा प्रसन्न रहते थे किन्तु एक आदमी बहुतही दुःखी था और वह पहला प्रधानमन्त्री था जो पदसे भ्रष्ट होनेके कारण ईर्ष्यादिसे उसका हृदय कुम्हारके आवेके समान भीतर-ही भीतर जलता रहता था। अतः कल्पक-को नीचा दिखाने तथा फिरसे अपनेपदको पानेके लिये वह (अन-वरत यत्न) पूरी कोशिश करने लगा। किसीका परिश्रम व्यर्थ नहीं जाता आखिर उसका भी परिश्रम सफल हुआ। उसकी कूटनीतिने राजा नन्दको अन्धा बना दिया। दुर्भाग्यवश राजाने विना कुछ समझे-बूझे मन्त्री कल्पकको सपरिवार पकड़कर अन्धकूपमें क़ैदकर दिया और उन लोगोंके खाने-पीनेके लिये बहुत ही कम अन्न जल दिये जानेकी व्यवस्था कर दी। कल्पकके क़ैद होनेकी बात जब चारों तरफ़ फैल गयी, तब शत्रु राजाओंके आनन्दकी सीमा न रही। सबने अपनी-अपनी सेना सुसज्जित कर पाटलि-पुत्रको घेर लिया। यह हालत देखकर राजा नन्दके होश उड़ गये,

और मारे घबराहटके उसका हृदय काँपने लगा। इस समय राजाको कल्पक की उपयोगिता याद आयी। और वह उसके लिये व्याकुल हो उठा। वह बार-बार यही कहता, कि आज यदि कल्पक होता, तो राजधानीकी यह दुर्दशा कदापि नहीं होती। इसलिये अब भी उस अन्ध कूपमें देखना चाहिये, कि कल्पक जीता हैं या नहीं। ऐसा सोचकर राजाने नौकरोंको आज्ञा दी, कि जल्दी खबर लाओ कि कूपमें कल्पक जीता है या नहीं राजाकी आज्ञा पाकर (भृत्यों) नौकरोंने उस कुएमें प्रवेश कर कल्पकको बाहरनिकाला। उस समय उसकी अवस्था बडी ही शोचनीय हो रही थी। उसका सारा शरीर पीला पड़ गया था और हिलने-डोलने या चलने फिरनेकी भी उसमें शक्ति न थी; किन्तु उसे जोवित देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुए और पालकी में बैठा कर वह उसे किलेमें ले आये। उचित चिकित्सा तथा खान-पानका उपयुक्त प्रबन्ध करके शीघ्रही कल्पक को भला-चँगा बना लिया। अच्छे हो जानेपर कल्पक शत्रु राजाके मन्त्रीसे मिला और संकेतके द्वारा बात चीत की। यद्यपि शत्रुके मन्त्रिने कल्पकके भावको भलिभाँति न समझ सका तथापि उसकी तीव्र बुद्धि और तेज शक्तिके सामने ठहर न सकनेके कारण वह अपने राजाको राजा नन्दकी राजधानीसे लौटा लेगया! कल्पककी बुद्धिके प्रभावसे विपक्षी राजाओंके चले जानेपर राजा नन्दने उस चाल बाज पुराने मन्त्रीको उचित शिक्षा देकर, निकाल दिया और कल्पकके ऊपर पूर्ववत पूज्यभाव रखने लगा।

श्रीस्थूल भद्र

मन्त्री कल्पकने कारागारसे मुक्त होने पर फिर अपनी शादी कर ली थी। अतएव उसके पुत्र-पौत्रादि सन्तति बहुत हो गयीं थीं। कल्पककी मृत्युके बाद भी उसके बंशज ही नन्द वंशके राजाओंके मन्त्रिपद पर आसीन रहे। क्रमशः राजा नन्दकी गद्दीपर जब आठ नन्द-राजा हो चुके तब परम प्रतापी नवम नन्द राजा हुआ और उनका मन्त्री उसी कल्पकके वंशका शकडाल हुआ। शकडाल भी बड़ाही बुद्धिमान, धार्मिक तथा कल्पक केही समान सवगुण लंकृत था। इसके दो पुत्र हुए। बड़ेका नाम स्थूल भद्र और छोटेका श्रीयक था। स्थूल भद्रजी विनयादि गुणयुक्त तो थे, ही किन्तु इनकी बुद्धि बड़ी स्थूल थी और श्रीयक माता-पिताका भक्त तीक्ष्ण बुद्धि तथा बहुत बड़ा चतुर था। वह बराबर अपने पिताके साथ राज-सभामें जाया करता था। इसलिये बड़े होने पर उसे राजा नन्दने विश्वास पात्र और प्रीति पात्र समझकर अपने अंगरक्षकके पद पर नियुक्त किया। स्थूलभद्रजी का चित विषय वासनाकी ओर बिशेष झुका रहता था। अतः उसी नगरमें रहने वाली एक कोश्या नामक वेश्यासेप्रेम हो गया। और रात-दिन वह उसी कोश्या वेश्याके घर रहने लगे।

पाटलिपुत्र नगरमें उसी समय एक वर रुचि नामक ब्राह्मण रहता था। वह व्याकरणादि सब शास्त्रोंमें बड़ा कुशल और कविता बनाने मेंबड़ा दक्ष था। प्रति दिन राज-सभामें जाता और अपनी बनायी हुई कविताओंको सुनाकर राजाका मनोरञ्जन किया करता था किन्तु राजाकी ओरसे पारितोषिकमें कुछ भी नहीं मिलता था। राजाकी इच्छा थी कि मन्त्री जब इनकी प्रशंसा करें, तब पारितोषिक द; पर मन्त्री कभी ऐसा नहीं करते थे। यह बात कविको मालूम हो गयी। उसने मन्त्रीके घर जाकर उनकी पत्नीकी सेवा--शुश्रुषाकी और राजसभामें अपनी कविताओंकी प्रशंसा मन्त्रीके द्वारा करानेकी उनसे कोशिशकी आखिर स्त्रीके कहनेसे मन्त्रीने एकदिन राजसभामें वर रुचिकी कविताकी प्रशंसा की। उस दिनसे नित्यप्रति वर रुचिको एक सौ आठ स्वर्णमुद्राएं (मुहरें) दी जाने लगीं। कुछ दिन बाद इतना अधिक (व्यय)खर्च मन्त्री शकडालको पसन्द नहीं आया और उसने अनेक उपाय करके राज दरबारसे मुहरोंका दिया जाना बन्द करा दिया जिस दिन से वर रुचीका यह अपमान हुआ, उस दिनसे वर रुचिने मन्त्री शकडालका (छिद्रान्वेषण) करना शुरू किया। दैव योगसे उसी अमय मन्त्रीके छोटे पुत्र श्रीय- कका बिबाह होने वाला था। इस अवसरपर मन्त्री राजानन्दको अपने घरबुलाकर उनका सम्मान करना चाहते थे। इसी उद्देश्यसे उन्होंने छत्र, चमर तथा अनेक उत्तमोत्तम शस्त्र तैयार करा रहे थे।

यह बात एक दासीके द्वारा वर रुचिको मालूम होगयी। बस फिर क्या था? उसने झट एक श्लोक बना कर शहरके कितनेही लड़कोंको याद करादिया। वह श्लोक इस प्रकारथा—

"नवेत्ति राजा यह सो शकडालः करिष्यति।
व्यापाद्य नन्द तद्राज्ये श्रीयक स्थापयिष्यति॥"

अर्थात्—जो शकडाल करने वाला है, सो राजा नहीं जानता। नन्दको मारकर उसके राज्यपर अपने पुत्र श्रीयक को स्थापित करेगा। नगरके लड़कोंने यह बात सारे शहरमें फैला दी। परम्परासे राजाके कानतक भी जा पहुंची। इस बातके सुननेसे राजाके मनमें सन्देह हो गया और उन्होंने पता लगाने के लिये मन्त्रीके घर पर अपने नौकरोंको भेजा। नौकरोंने शकडालके घर जाकर शस्त्रोंको बनाते देखा और जो कुछ देखा, सो वैसेही राजासे कह दिया। यह सुनकर राजाका मन मन्त्रीकी ओरसे एकदम फिर गया। राज सभामें मन्त्रीके आनेपर राजा ने मारे कोपके उसके साथ बातें करनी तो दूर, उसकी ओर देखा तक नहीं। मन्त्री बड़ा बुद्धिमान था। वह झट समझ गया कि आज जरूर किसीने राजासे मेरी चुगली खायी है, इसी से राजा कुपित हुआ है। राजाको प्रतिकूल देखकर शकडाल शीघ्रही घर चला आया और अपने पुत्र श्रीयकसे कहा—"किसी दुश्मनने राजाका मन मेरी तरफसे फेर दिया है। अतएव यदि

शीघ्र उपाय न किया गया, तो मेरे सहित समस्त कुटुम्बका नाश हो जायेगा। इस संकटसे बचनेका एक मात्र उपाय यही है, कि मैं जब राज-सभामें जाकर राजाको प्रणाम करूं, तब तुम तलवारसे मेरा सिर काट डालना और यों कहना, कि राजा या स्वामीका अभक्त पिता भी मार डालने योग्य है। ऐसा करनेसे मेरे सिवा सारा कुटुम्ब बच सकता है। पहले तो श्रीयक ऐसा निर्दय कार्य करनेसे बहुत हिचकिचाया और उसने आँखोंमें आँसू भरकर अपने पितासे कहा, कि आप ऐसा नीचाति नीच अत्यन्त गर्हित कर्म करनेकी मुझे आज्ञा न दीजिये, परन्तु अन्तमें मन्त्रीके बहुत कुछ समझाने-बुझाने पर उसने वैसाही करना स्वीकार कर लिया। और भरी सभामें अपने पिताका सिर काट डाला। यह हालत देखकर सभाके सब लोग काँप उठे इसी समय राजाने बड़े मीठे बचनोंसे श्रीयकसे कहा,—हे वत्स! तूने यह क्या दुष्कर्म् किया?"

इसपर श्रीयक बोला,—"स्वामिन्! जब आपके मनमें यह आया, कि अमुक आदमी हमारा अपराधी हैं, तो आपके भक्तोंको उचित है, कि उसे उसी समय शिक्षा दें।"

यह सुन, राजा नन्द श्रीयककी प्रशंसा करता हुआ बोला,—"श्रीयक! सर्वाधिकार सहित इस प्रधान मुद्राके योग्य तू ही है। अतएव इस मुद्राको ग्रहण कर।"

श्रीयकने विनय पूर्वक राजासे कहा,—"स्वामिन पिताके समान मेरे बड़े भाई स्थूलभद्रजी विद्यमान हैं। उनके रहते मैंकैसे इस

मुद्राका अधिकारी हो सकता हूं ?"

राजाने स्थूल भद्रको बुलवाकर उसे प्रधान मन्त्रीकी मुद्रा देनेको कहा। स्थूल भद्र भी विचार कर उत्तर देनेको प्रतिज्ञा कर लौट आये और एकान्तमें बैठकर विचारने लगे। उस समय अकस्मात् उन्हे वैराग्य आ गया। मन्त्री पदकी कौन कहे, उन्हे भूपतिका पद भी दुःखदायी दिखने लगा। सारा संसार दुःखसे भरा है। इसलिये अब आत्मोद्धारका प्रयत्न करना चाहिये। ऐसा विचार कर स्थूलभद्रजीने वहाँ बैठे-ही बैठे सिरके केशोंका लोच कर डाला। और उनके पास जो रत्न-कम्बल था, उसे खोल उसकी रस्सियोंसे (ओघा) रजोहरण बना लिया। इसी वेशसे राज-सभामें जाकर उन्होंने राजासे कहा,—"मैने लोच कर लिया है" यह कहकर और राजाको (धर्म लाभ) आसीरवाद देकर स्थूलभद्र राजसभासे चलेगये। विरक्तसे परिपूर्ण हो, महात्मा स्थूलभद्रने श्रीसंभूति विजयजी आचार्यके पास जाकर सामायक ऊच्चारन कर विधि पूर्वक दीक्षा ग्रहण कर ली। वे उसी दिनसे निरति चार चारित्रका पालन करते हुए विचरने लगे।

एक दिन कई साधुओंने आचार्य महाराजके पास आकर चातुर्मास व्यतीत करनेके विषयमें अपनी-अपनी इच्छा प्रकट की। किसीने कहा कि मैं चार मासतक आहारका त्याग कर कायोत्सर्ग ध्यानसे सिंहकी गुफाके दरवाजे पर चातुर्मास व्यतीत करना चाहता हूं। किसीने कहा कि मैं दृष्टि विष सर्पके बिलपर और किसीने मेंडकके आसनसे कुएँ की मणपर रहकर चातुर्मास

व्यतीत करनेकी आज्ञा माँगी गुरु महाराजने भी सबको योग्य समझकर प्रत्येककी इच्छाके अनुसार आज्ञा दे दी। तब श्रीस्थूल भद्रजी महाराज भी गुरु महाराजसे विनय पूर्वक बोले,—"भगवन्! मैं पाटलिपुत्रमें रहनेवाली कोशानामक वेश्याकी चित्रशालामें रह कर षट् रस भोजन करता हुआ चातुर्मास पूर्ण करूँ, यही मेरा अभिग्रह है। गुरु महाराजने इन्हें भी आज्ञा दे दी। और मुनिगण अपने-अपने अभीष्ट स्थानपर चले गये। और उन महात्माओंके तपके प्रभावसे सिंहादि पशु सब शान्त हो गये। इधर श्रीस्थूलभद्रजी जब कोशा वेश्याके मकानपर गये, तो कोशाने दूरसेही श्रीस्थूलभद्रजी को देखकर विचारा कि ये प्रकृतिसे सुकुमार हैं। अतएव चारित्रका बोझ इनसे सहन न हो सका; अतः ये चले आ रहे है। कोशा ऐसा विचारकर हाथ जोड़कर खड़ी हो गयी और स्वागत पूर्वक बोली,—स्वामिन्! तन, मन, धन—सब आपका हैं। आज्ञा दीजिये, मै क्या करूँ।"

श्रीस्थूभद्र बोले,—मुझे और कुछ न चाहिये, तेरी उस चित्र शालाकी।आवश्यकता है। मुझे वहीं चातुर्मास रहना है।" वेश्याने बड़े हर्षके साथ इस बातको स्वीकार किया, और मुनिजी वहाँ रहने लगे। कोशा भी श्रीस्थूलभद्रके षट् रस आहार कर लेनेपर उन्हे संयमसे विचलित करनेके लिये सोलहों शृंगार करके चित्रशालामें आकर अनेक प्रकारसे हाव-भाव दिखाने लगी, कभी पहले समयमें बारह बरसतक श्रीस्थूलभद्रजीने कोश्याके मकानपर रहकर उसके साथ जो विषय-सुख भोगा था, उसकी कितनी ही

गुप्त बातोंकी याद करा कर वह उन्हें माहित करना चाहती थी, किन्तु महा धैर्यवान् श्रीस्थूलभद्रजी चलायमान न हुये, बल्कि कोश्या वेश्याके हाव-भावोंसे दिन-दिन श्रीस्थूलभद्रजीके हृदयमें ध्यानाग्नि देदीप्यमान होती गयी।

उस समय सबही संयोग कामदेवको उद्दीपन करने वाले थे। एक तो वर्षाकाल, दूसरे चित्रशालाका मकान, तीसरे कोश्याका अनुपम रूप और काम चेष्टाएं—इतने साधन होने पर भी उन महामुनिके मनका भाव ज़रा भी विचलित न हुआ। तब तो कोश्या बहुत ही शर्मिंदा हुई और हाथ जोड़कर अपनी कुचेष्टाके लिये क्षमा प्रार्थना की। वर्षाकाल व्यतीत होनेपर वे तीनो मुनि और श्रीस्थूलभद्रजी घोर अभिग्रहोंको पूरा करके गुरु महाराजके पास आये। गुरु महाराजने भीऔर मुनियोंके आने पर थोड़ा२ और स्थूलभद्रजीके आने पर एकदम आसनसे उठकर स्वागत किया। उन्होंने उन तीनों मुनियोंको दुष्करकारक और स्थूल-भद्रजीको दुष्कर दुष्कर कारक् कह कर सम्बोधन किया। इस प्रकार स्थूलभद्रजी की प्रतिष्ठा सब मुनियोंसे अधिक हुई तथा चारित्र पालनमें तो ये उस समय अद्वितीय हो गये। इसके बाद श्रीस्थूलभद्रजी तीव्र तपस्याएं करते और अनेक प्रकारके अभि-ग्रहोंको धारण करते हुए पृथिवीतलपर विचरने लगे।

चन्द्रगुप्त चरित्र

राजा नन्दके बाद पाटलिपुत्रके राज्यासनपर महा प्रतापी चन्द्रगुप्त राजा हुए। एक समय राजा नन्दकी सभामें चाणक्य नामका एक ब्राह्मण धन पानेकी इच्छासे आया और राजाके सिंहासनपर बैठ गया। उस आसनपर राजा नन्दके सिवा और कोई न बैठता था। राजाके भद्रासनपर चाणक्यको बैठा देख, (परिचायक) नौकरने पृथक् एक आसन बिछा दिया और विनय पूर्वक कहा, कि आप उस आसनसे उठकर इसपर बैठ जाइये, किन्तु चाणक्यने राज्यासनको न छोड़ा बल्कि उस दूसरे आसनपर अपना कमण्डलु रख उसे भी रोक दिया। इस प्रकार नौकरोंने कई आसन बिछाये, पर उसने उनपर भी दण्ड तथा माला आदि वस्तुएँ रख दीं और उन सबको भी रोक दिया। इसपर नौकरोंने मारे क्रोधके कुछ ऊँच-नीच शब्द कहते हुए चाणक्यको अपमानके साथ उतार दिया। इस अपमानमें चाणक्य मारे क्रोधके आग हो गया और उसकी आँखे लाल हो गयीं। उसने अपनी शिखाको खोल भरी सभामें प्रतिज्ञा की, कि जब तक इस अन्यायी और अभिमानी राजा नन्दको राजगद्दीसे न उतार लूँगा, तबतक इस शिखाको न बाँधूंगा। ऐसी भीषण प्रतिज्ञा करके वह चला गया और

राजा नन्दको उन्मूलित करनेका यत्न करने लगा। चाणक्यने राजा नन्दकी गद्दीपर चन्द्रगुप्त नामक एक बालकको बैठानेका पूर्ण संकल्पकर लिया और वह उस बालकको अपने साथ रखने लगा। चन्द्रगुप्तके सम्बन्धमें अनेकानेक मत-भेद हैं। जैनशास्त्रके अनुसार चन्द्रगुप्तका जन्म मयूर पोषकके वंशमें हुआ था। इस की कथा इस प्रकार है:—

जब चाणक्य राजा नन्दको (उन्मूलन) उखाड़नेकी प्रतिज्ञा कर पाटलिपुत्र-नगरसे बाहर निकल गया; तब वह राजगद्दी पानेके योग्य मनुष्यकी खोज करनेमें लग गया। एक दिन घूमता-फिरता चाणक्य परिव्राजकके वेशमें मयूर पोषकोंके ग्राममें जा पहुँचा। उस ग्रामके सरदार की एक लड़की गर्भवती थी। उस गर्भवतीको यह इच्छा हुई कि चन्द्रमाको पी जाउँ; परन्तु इस इच्छाका पूर्ण होना असम्भव था। और उसका पूर्ण न होना भी हानिकर था; क्योंकि वैद्यक शास्त्रका मत है, कि यदि गर्भवती की इच्छा पूर्ण न की जाये, तो गर्भ नष्ट हो जाये या अयोग्य बालक पैदा हो इसलिये उस लड़कीके कुटुम्ब बड़े व्याकुल थे। इसी समय चाणक्य वहाँ पहुँचा। मयूर पोषकोंने चाणक्यको सब हाल कह सुनाया। उनकी बातें सुनकर चाणक्यने कहा,—"यह काम है, तो बड़ा ही दुष्कर; पर यदि तुम मेरा कहा मानो तो मैं इस गर्भवती की इच्छाको पूर्णकर सकता हूं।" मयूर पोषकोंने कहा,—"आप जो कुछ कहें, हम करनेको तैयार हैं।" अब चाणक्यने कहा, कि 'तुम इस कन्याके गर्भसे उत्पन्न होनेवाले

बच्च को मुझे दे देनेकी प्रतिज्ञा करो।" उस कन्याके पिताने लड़की की जीवन-रक्षाके विचारसे वैसाही करना स्वीकार किया। चाणक्यने बड़ी खूबी और युक्तिके साथ चन्द्रमाके बिम्बसे प्रतिबिम्बित एक थाली दूध उस लड़कीको पिला दिया। यह काम इस खूबीसे किया गया, कि उस लड़कीको पूरा विश्वास हो गया, कि मैंने चन्द्रमाको पी लिया। इच्छा पूर्ण हो जानेपर यथा समय उस कन्याके गर्भसे चन्द्रमाके समान सौम्य और सूर्यके समान तेजस्वी पुत्रका जन्म हुआ। चन्द्रमाको पान करनेकी अभिलाषा करने वाली मातासे जन्म ग्रहण करनेके कारण माता-पिताने उस बालकका नाम चन्द्रगुप्त रखा। चन्द्र-गुप्त दिन-दिन चन्द्रकलाके समान ही बढ़ने लगा और कुछ ही दिनमें बड़ा हो गया। अपने पड़ौसके लड़कोंके साथ वह गांवके बाहर चला जाता और अनेक तरह की क्रीड़ा करता था। उसके खेल अन्य लड़कोंके समान नहीं होते थे। वह किसीको हाथी, किसीको घोड़ा, किसीको सैनिक और किसीको सेनापति बनाता और आप राजा बनकर शासन करता था। एक दिन संयोग वश चाणक्य अचानक वहीं चले आये और चन्द्रगुप्त की ऐसी चेष्टाएँ देखकर बड़े आश्चर्यमें पड़ गये और लड़कोंसे पूछा, कि "यह लड़का किसका है।"

लड़कोंने कहा,—"यह एक परिब्राजकका पुत्र है; क्योंकि जब यह गर्भमें था, तभी इसके माता-पिता तथा नानाने इसे एक परिब्राजकको देनेकी प्रतिज्ञाकर ली है।"

लड़कोंकी बातें सुनते ही चाणक्य समझ गया, कि यह तो वही बालक है, जिस गर्भवती माताकी इच्छा मैंने पूर्ण की थी। चाणक्यने उस लड़केको पास बुलाकर कहा,—"तेरे माता-पिताने मुझे समर्पण किया है, वह परिव्राजक मैं ही हूं। आ, तू मेरे साथ चल। यह राजाओं की नकल क्या करता है। चल, मैं तुझे सच्चा राज्य देकर राजा बनाऊँ।

अन्य लोगोंके मतसे चन्द्रगुप्त मुरा नामकी दासीके गर्भसे उत्पन्न राजा नन्दका ही पुत्र था। इसीसे मौर्यके नामसे भी चन्द्रगुप्त प्रसिद्ध है। जब चाणक्य राजा नन्दकी सभासे अपमानित होकर चला, तब उसने नन्द वंशका(मुलोछेद) जड़से उखाड़नेको प्रतिज्ञाके साथ साथ यह भी कहा कि जो कोई इस समय इस सभासे उठकर मेरे साथ चलेगा, उसीको मैं पाटलिपुत्रके राज्यासनपर प्रतिष्ठित करूंगा। यह सुनकर चन्द्रगुप्तने, जो उसी सभामें बैठा था, सोचा कि मैं किसी प्रकार राज्यका अधिकारी तो नहीं हूं; पर कदाचित इस ब्राह्मणके द्वारा राज्य पा जाऊं इस प्रकार विचार कर वह उठ खड़ा हुआ और सबके देखते-देखते चाणक्यके साथ हो लिया। चाणक्य चन्द्रगुप्तको अपने साथ लेकर पाटलिपुत्रसे बिदा हुआ और कुछ ही दिनों में उसने अपनी विद्वता एवं नीति निपुणताके द्वारा कई राजाओंको मिला लिया। उनको मिलाकर उसने पाटलिपुत्रपर चढ़ाई करा दी और राजा नन्दको स परिवार, स सैन्य नष्ट-भ्रष्ट कराके चन्द्रगुप्तको पाटलिपुत्रका राजा बना दिया। चन्द्रगुप्त

बड़े प्रतापी राजा हुए। अपने शासन-कालमें इन्होंने भी बड़ा यश प्राप्त किया। चन्द्रगुप्तके ऐहिक लीला संवरण करके परलोक चले जानेपर उसके पुत्र बिन्दुसार पाटलिपुत्रके राजा हुए। बिन्दुसारके बाद उनके पुत्र अशोक राज्यगद्दीपर आसीन हुए। ये बड़े ही धर्म्मात्मा, विद्याप्रेमी प्रजा पालक थे। उन्होंने अपने शासन कालमें अनेक शिलालेख, स्तम्भ तथा स्तूप प्रतिष्ठित किये थे। इनके गुण गानसे भारतीय इतिहास आज भी ओतप्रोत है। अशोकका पुत्र कुणाल था। वह दोनों आँखोंका अन्धा था। अतएव उसका पुत्र (अशोकका पौत्र) सम्प्रति नामक अशोकके पश्चात पाटलिपुत्रके राजा हुए। ये बड़े पराक्रमी, पुण्यात्मा तथा शूर-वीर थे। थोड़े ही दिनोंमें इन्होंने सारे भूमण्डलको अपने आधीन कर लिया और इन्द्रके समान अपने प्रजावर्गका पालन करने लगे। इसी समय भयंकर दुष्काल पड़ा। इससे साधु लोग यत्र-तत्र निर्वाहके योग्य स्थानोंको चले गये। इससे पठन-पाठन न होनेके कारण वे पठित विषयोंको भी भूलने लगे। जब द्वादशवर्ष व्यापी दुष्काल बीत गया, तब पाटलिपुत्र नगरमें समस्त संघने मिलकर श्रुत ज्ञानका मिलान किया, तो ग्यारह अंग मिले; किन्तु बारहवाँ अङ्ग दृष्टिवाद न मिला। व्यवच्छेद हो गया था। उस समय नेपाल-देशके मार्गमें चतुर्दश पूर्वधर श्रुत केवली श्रीभद्रबाहु स्वामी विचरते थे। संघने साधु समुदायको पढ़ानेके लिये श्रीभद्र बाहुजीको बुलानेके लिये दो मुनियोंको भेजा, किन्तु उस

समय भद्रबाहुजी महाराजने महाप्राण नामक ध्यानकी आराधना आरम्भ की हुई थी। अतएव उन्होने साधुओंसे कहा, कि इस समय मैं पाटलिपुत्र नहीं जा सकता, किन्तु यदि कुछ बुद्धिमान साधु यहां आवें, तो किसी प्रकार मैं कुछ समय निकालकर प्रतिदिन सात बाचनाएं दे दिया करूंगा। साधुओंने आकर संघसे यह बात कही और संघने इसे स्वीकार करके स्थूल भद्रादि पांच सौ बुद्धिमान साधुओंको दृष्टिवाद पढ़नेके लिये श्रीभद्रबाहुजी आचार्यके पास भेजा। आचार्य महाराज सबको पढ़ाने लगे। थोड़ी बांचना मिलनेके कारण साधुओंकामन न जमा। अतएव कुछ कालबाद स्थूलभद्रजीके सिवाय सब साधु लौट आये। अब आचार्य महाराजका सब समय अकेला श्रीस्थूलभद्रजीको ही मिलने लगा। ये महा प्रज्ञावान् भी थे। अतएव शीघ्र ही चतुर्दश पूर्वधर हो गये। भगवान् श्रीमहावीर स्वामीके मोक्ष हो गये बाद एक सौ सत्तर वर्ष व्यतीत होनेपर श्रीभद्रबाहु स्वामीने आचार्य पदपर श्रीस्थूलभद्रजीको विभूषित किया और उन्हें अपने पदपर निविष्ट करके स्वर्ग सिधार गये। आचार्य श्रीस्थूलभद्रजीके दो शिष्य थे, जिनमें बड़ेका नाम आर्यमहागिरि और छोटेका नाम आर्यसुहस्ती था। ये दोनों ही बडे पवित्र चारित्रवाले भवभीरु और धर्म रक्षक थे। प्रज्ञावान् होनेसे थोड़े ही समयमें उन दोनोंने गुरु महाराजसे दशपूर्वकी विद्या पढ़ ली। एक दिन अपनी आयुको पूर्ण हुआ समझकर महात्मा श्रीस्थूलभद्रजी उन दोनों शिष्योंको आचार्य पद देकर समाधि पूर्वक स्वर्गा तिथि

होगये। ये दोनों आचार्य अपने अपने गच्छके साथ पृथ्वीपर विचरने लगे।

एक दिन वे दोनों ही आचार्य विहार करते हुए पाटलिपुत्र नगरमें पधारे। यहां उन्हें राजा सम्प्रतिसे भेंट हुई। राजा आर्य सुहस्ती सूरि महाराजको बन्दना करनेके लिये महलसे उतरे और ज़मीनपर मस्तक टेक कर बन्दनाकी पीछे धर्मके विषयमें आचार्य महाराजसे कुछ प्रश्न किये। उन प्रश्नोंका उत्तर दे देनेके बाद आचार्य महाराजने राजाके पूर्व जन्म की कथा कह सुनायी। आचार्य महाराजसे अपने पूर्वभवका वृतान्त सुनकर राजा हाथ जोड़कर बोले,—

"भगवन्! आज दिन मैं जिन विभूतियोंका उपभोग कर रहा हूं, वह सब आपकी ही कृपाका फल हैं। अतएव आप मुझे धर्मपुत्र-शिक्षासे अनुगृहीत करें।" भगवन् आर्य सुहस्ती-सूरिने उन्हें धर्ममें दृढ़ रहनेका आदेश दिया। उस दिनसे राजा सम्प्रति परम श्रावक बन गए। और अपने नगरको देवालयों चैत्यालयों, भोजनालयों, औषधालयों, विद्यालयों, तथा दान-शालाओंसे विभूषित कर दिया। इसी समय आर्य महागिरि और आर्य सुहस्तीसूरिमें परस्पर विवाद हो जानेके कारण एक ही समाचारी वालोंके पृथक-पृथक दो मार्ग हो गये। यहावीर स्वामीने पहले ही कह दिया था, अस्तु।

"मदीये शिष्य सन्ताने स्थूलभद्र मुनेःपरं।
पत्प्रकर्षा साधू नां समाचारी भविष्यति।"

उपर्युक्त उपाख्यानोंसे स्पष्ट है, कि पाटलिपुत्र बहुत ही प्राचीन और जैन धर्मका केन्द्र है। यदि कहा जाये कि पाटलिपुत्र जैन धर्मके विशेष विकाशके लिये ही स्थापित हुआ था, तो कोई अत्युक्ति न होगी। पाटलिपुत्र ही एक स्थान है, जहां परम प्रतापी जैन धर्मावलम्बी उदायीसे सम्प्रति पर्यन्त राजाओंका शासन पीढ़ीदर पीढ़ीतक अविच्छिन्न कायम रहा। और स्थूलभद्रजीके समान सर्वज्ञ एवं सेठ सुदर्शनके समान केवल ज्ञान और महापुरुषोंका जन्मस्थान तथाज्ञान-विकाशका एकमात्र पाटलिपुत्र ही है।

राजा अशोकके समयमें सर्वसे प्रथम ग्रीसका राजदूत मेगास्थनीज़ पाटलिपुत्रमें आया था। उसके बाद विदेशियोंका आवा-गमन प्रारम्भ हो गया। तदनन्तर चन्द्रगुप्तके समय बहुत विशेष बढ़ गया। महम्मद गौरीके आगमनके पूर्व और सम्प्रति राजाके पश्चात् और भी कितने हो हिन्दू राजाओंने पाटलिपुत्रका शासन किया था किन्तु पीछे पाटलिपुत्रमें मुसलमान बादशाहोंका अधिकार हो गया। मुसलमान बादशाहोंमें शेरशाहने पाटलिपुत्रको 'पटने' के नामसे बदल दिया, जो आजतक पटनेके ही नामसे प्रसिद्ध है।

पटनेका अन्तिम मुसलमान शासक नवाब मीरकासिम था। उसने सन् १७६३ ई० में अङ्गरेजोंके साथ युद्ध किया। युद्धमें अङ्गरेजोंकी बिजय हुई और सर्वसे प्रथम पटनेका अधिकार एलिस साहबके हाथ गला। पीछे क्रमशः इस्ट इण्डिया कम्पनी

से वृटिश गवर्नमेंटके हाथमें आया। अङ्गरेज़ोंके हाथमें आनेपर पटनेमें सर्वत्र शान्ति रही, किन्तु एक बार सन् १८५७ ई० को पटनेमें फिर युद्ध की आग प्रज्वलित हुई थी, जो आज सिपाही विद्रोहके नामसे विख्यात है। यद्यपि यह विद्रोह भयंकर रूप धारण करके भारतके अनेक अञ्चलमें फैला; किन्तु सबका केन्द्र पटना ही था। अतएव इतिहासमें सिपाही विद्रोहके विषयमें पटनेका ही विशेष उल्लेख है।

भूतपूर्व राजाओं तथा धर्म एवं धर्माचार्योंके अनेक स्मृति-चिन्ह पटनेमें थे, किन्तु आज वे सब नष्ट भ्रष्ट हो गये। जो टूटेखण्डरकुछ (भग्नावशेष) बचे हैं, उनकी दशाभी बहुतही शोचनीय है। जिस किसी उपायसे अवशिष्ट प्राचीन स्मृतिकी रक्षा करना इस समय नितान्त आवश्यक तथा मनुष्यमात्रका परम मर्त्तव्य होना चाहिये। क्योंकि इस समय जब कि प्रत्येक जाति और समाज अपना प्राचीन गौरब प्राप्त करनेके लिये उत्सुक हो रही है, जो एक मात्र प्राचीन स्मृति चिन्होंकी रक्षा करना तथा उन्हें आदर्शके आधारपर भावी उन्नति की ओर अग्रसर होना ही उपयुक्त होगा। अन्यथा पूर्ण गौरव प्राप्त करनेके लिये सारे परिश्रम और यत्न शशकश्टङ्ग (खरगोशके सींग) को ढूढ़नेके लिये जङ्गल-जङ्गल घूमनेके समान व्यर्थ एवं कष्टदायक होनेके अतिरिक्त और कुछ नहीं होगा। सबसे बढ़कर जैन स्मृतियोंकी दशा खराब हो रही है। इसका प्रधान कारण पटनेमें जैनियोंकी कमी तथा धनका अभाव है। अतएव अन्य देश-देशान्तरोंके

जैन भाइयोंको तन-मन-धनसे उपयुक्त पुण्यकार्यमें हाथ बटाकर यश प्राप्त करना चाहिये; नहीं तो यदि शीघ्र उस ओर ध्यान नहीं दिया जायेगा, तो वे स्मृतियां भी दर्शनीय न रहकर केवल स्मरणीय ही रह जायेंगी।

पटनेका भौगोलिक विवरण तथा प्राकृतिक दृश्य

पटना बिहार प्रदेशके मगध प्रान्तमें गङ्गाके दक्षिण तटपर अवस्थित है। यहां ई० आई० रेलवेके तीन मुख्य स्टेसन शहरके अन्दर हैं:—(१) पटना सिटी (बेगमपुर,) (२)(गुलज़ार बाग,) (३) पटना जंकशन। इसके उत्तर गङ्गा, दक्षिण जल्ला नाम की एक छीछल-नदी, पूर्वमें पुन-पुन नदी-पश्चिममें शोणभद्र या गंगाकी एक नहर है। इसका क्षेत्रफल ऐसे तो बहुत जियादा है; किन्तु मुख्य अट्ठारह वर्ग मील है—नव मील लम्बा और दो मील चौड़ा है, जो इस समय पूर्व और पश्चिम दरवाजेके नामसे प्रसिद्ध हैं। यहां की लोक-संख्या कुछ न्यूनाधिक १६ ५१६२ है

[श्रीस्थूलभद्र स्वामी तथा सुदर्शन सेठके मंदिर]

यहां जैनियोंके मन्दिरोंमें सबसे प्राचीन, तथा प्रधान परम पूज्य श्रीस्थूलभद्रजी और श्रीसुदर्शन सेठके दो मंदिर गुलजार

बागमहल्लेमें मशहूर हैं। यहां प्रत्येक वर्ष देश देशान्तरोंसे अनेक नर-नारी जैन यात्री दर्शनके लिये आते हैं। इन मन्दिरों की निर्माण—प्रणालीके देखनेसे उनकी प्राचीनता साफ़ साफ़ ज़ाहिर होती है। ये दोनों स्थान जिस प्रकार भव्य हैं, उसी प्रकार ज्ञान और उत्साहको बढ़ाने वाले हैं। इन स्थानोंके देखनेसे हृदयमें स्वभावत: एक अनिर्वचनीय भाव उत्पन्न होता है। यदि वह भावस दाके लिये स्थिर रह जाये, तो फिर क्या पूछना -मनुष्य वास्तविक मनुष्य हो जाये। इतिहास प्रेमियोंके लिये ये दोनों स्थान जैन-इतिहासकी बहुमूल्य सामग्री हो जाती है। इनके अतिरिक्त डंका कूचा बाड़ेकी गली आदि महल्लोंमें जैनियोंके अनेक देवालय तथा चैत्यालय हैं, जो इस समय छिन्न भिन्न तथा मलिन दशामें पड़े हैं।

श्री बडी पटन देवीजी और छोटी पटन देवी—ये दोनों स्थान भी बहुत प्राचीन तथा हिंदुओंके परम पूज्य तथा आराध्य है। इनकी बनावटसे भी प्राचीनता टपकती रहती है। एक चौकसे कुछ पूर्व स्वनाम-विख्यात महल्लेमें है और दूसरा महाराज गञ्ज नामक महल्लेमें है।

श्रीकाली मंदिर—यह स्थान छोटी पटनदेवीके समीप है। यह स्थान कितना प्राचीन है, यह कहा नहीं जा सकता किंतु परम सिद्ध तथा रमणीक है।

श्री गोपीनाथजीका मंदिर— यह स्थान भी बहुत प्राचीन और भव्य है, किन्तु उसकी प्रतिमा प्राचीन नहीं है। बीचमें कभी

किसी कारणसे प्रतिमाका परिवर्तन हुआ है। ऐसा जान पड़ता है।

श्री आगम कुआं और शीतलास्थान—यह बहुत ही सिद्ध परम पवित्र एवं बहुत प्राचीन स्थान है। कुआँ बहुत विशाल है। लोगोंका विश्वास है कि आगम कुआंके जलका स्पर्श मात्र करनेसे कई प्रकारके रोग निर्मुल हो जाते हैं। अतएव अनेक कठिन बीमारीयोंमें उक्त कुएंका जल व्यवहार और सेवन किया जाता है। हिन्दू लोग उसे अनादि तथा स्वयंभूत मानते हैं, किन्तु कई एक ऐतिहासिकोंका मत है, कि इसका निर्माण सम्राट अशोकके समयमें हुआ था। जो भी हो, यह स्थान अति प्राचीन है, इसमें सन्देह नहीं। चैत्रसे आषाढ़ तक चार महीनोंके प्रत्येक कृष्ण पक्षकी अष्टमीको यहां मेला लगता हैं, जो बसिअवराके नामसे ख्यात है। इस अवसरपर नगर-भरके आबाल-वृद्ध नर-नारी यहां उपस्थित होते हैं। और दर्शन पूजनादिके द्वारा आमोद्-प्रमोद् करते हैं।

यह स्थान भी बहुत ही जीर्ण-शीर्ण हो गया था, किंतु बीस वर्ष हुए, कि बिहार-सरकारके द्वारा इसका जीर्णोद्धार किया गया है। जीर्णोद्धारके समय ठेकेदारको बड़ी कठिनाईका सामना करना पड़ा था। पूर्ण परिश्रम तथा यत्न करनेपर भी तीन दिन तक पानी निकालनेवाली मशीन न चल सकी थी। पीछे बहुत पूजा-पाठ और अनुनय विनय करनेपर मेशीन चलने लगी। आठ दिन तक दिन-रात मेशीनके चलनेपर मिट्टी निका-

लनेका काम शुरू हुआ, तो प्रतिदिन सवेरे ५ बजेसे १० बजे तक मेशीनचलायी जाती, १० बजेसे ५ बजे सायंकालतक मिट्टी निकाली जाती, इसके बाद १० बजे रात तक फिर मेशीन चलायी जाती थी। इस प्रकार लगातार तीन महीने तक अन वरत परिश्रम करनेपर कुएंके निम्न तलतक सफाई न हो सकी और न उसकी गहराईका ही पता चला। तब लाचार सफाईका काम बंदकर मरम्मतका काम प्रारम्भ करना पड़ा। सफाई करते समय हजारों पुरातन सिक्के एवं अन्यान्य कितनी ही चीजें निकलीं। लोटा आदि पात्रोंकी तो कोई गणना ही न थी। इस प्रकार कई हज़ार की सम्पत्ति विहार—सरकारको उस कुएंसे प्राप्त हुई थी। यह स्थान गुलजार बागके प्रधान जैन तीर्थ कमल दहके समीप ही स्वनाम ख्यात महलेमें अवस्थित हैं।

इसके अतिरिक्त अन्यान्य कितने ही हिंदुओंके देव-मंदिर तथा तीर्थस्थान पटनेमें हैं, जहां समय- समयपर वारुणि आदि नामोंसे मेले लगते तथा लोग उनके दर्शन-पूजनसे अपनी आत्मा-ओंको पवित्र करते है।

श्री हरमन्दिर—यह सिक्खोंका परम तीर्थस्थान हैं। सिक्खोंके सर्वतीर्थोंमें इसका दूसरा नम्बर है। यहाँ सिक्ख-गुरु श्रीगोबिन्द सिंहका जन्मस्थान कहा जाता है। यहाँ ग्रन्थ साहब चक्रा दण्ड और खड़ाऊंका दर्शन यात्रियोंको कराया जाता है, इस मन्दिरके भीतर एक कमरा अनेक अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित है, जो यात्रियों-को दिखलाया जाता है। यहां इतनी लम्बी-लम्बी तलवारे

तथा बंदूकें हैं, उतनी बड़ी और लम्बी आजकल कहीं देखने या सुननेमें नहीं आतीं। इसके अतिरिक्त अन्यान्य अस्त्र-शस्त्र भी बहुत बड़े आकारके हैं। ये सब शस्त्रास्त्र किनके हैं और यहां क्यों रखे गये है, इत्यादि बातें पूछनेपर उनका पूरा-पूरा वृत्तान्त वहांके महन्त बहुत सम्मानके साथ लोगोंको सुनाते है। सिक्खोंका विश्वास है, कि गुरु गोबिन्द सिंह फिर एक बार यहां आयेंगे। उस समय मन्दिरके भीतर रखी हुई तलवार आपसे आप ऊपरको उठ जायेगी तथा कुएंका जल खारीसे मीठा हो जायेगा। अङ्गरेज भी इस स्थानको सम्मान की दृष्टिसे देखते हैं। प्रायः इस स्थानके प्रबन्धकी देख-रेखका भार अंशतः यहांके प्रधान जजके ऊपर भी रहता है। इसकी शाखा और भी कई नगरोंमें है। कलकत्तेमें हरिसन् रोडकी बड़ी संगत इसकी शाखा है। यह स्थान झाऊगंज महल्लेके पास स्वनाम धन्य महल्लेमें हैं।

इसके अतिरिक्त मैनी संगत, नून गोला की संगत पश्चिम दरवाजेकी संगत आदि कई स्थान सिक्खों तथा नानक शाहियों के हैं, जो परम भव्य तथा प्रभावोत्पादक हैं।

मुस्लिम—स्मारक—मुसलमान बादशाहों तथा सिद्ध फकीरों (आलिम, पीर, औलिया] के भी कितने ही स्मारक स्थान हैं; जैसे—पत्थरकी मसजिद, कच्ची दरगाह, पक्की दरगाह, त्रिपौलिया, छोटी मथनी बड़ी मथनी आदि। ये सब स्थान शहरके अनेक महल्लोंमें हैं। मुसलमान इन स्थानोंको बड़े आदरसे देखते हैं।

मुसलमान फकीरोंमें अन्तिम सिद्ध फकीर टिकिया साईं हुआ। उसकी प्रसिद्धी बहुत है अपने तपोबलसे इस फकीरने ऐसे-ऐसे आश्चर्यजनक कार्यकर दिखाये जिनकी चर्चा आज दिन भी पटना-निवासी बराबर कियाकरते हैं। इस फकीरको हुए अभी बहुत दिन नहीं हुए हैं—अन्दाज एक सौ वर्षके लगभग हुए है।

अङ्गरेजी सम्राज्य—'गोल-घर' यह पटनेकी पश्चिमी सीमाके अन्तमें अवस्थित है। इसकी ऊंचाई, मोटाई, तथा परिधि बहुत ही अधिक है और देखने योग्य है। यह सन् १७८४ ई० में अकाल-निवारणके लिये इस्ट इण्डिया कम्पनीके द्वारा निर्माण कराया गया था।

इसके अतिरिक्त सन् १८५७ ई० के सिपाही विद्रोहमें आहत अङ्गरेजोंका स्मारक (कब्रस्तान) है, जो आज भी गिरजाके नामसे प्रसिद्ध है।

आधुनिक दृश्योंमें हाईकोर्ट तथा लाट साहबका निवासस्थान अत्यन्त मनोरम और दर्शनीय स्थित है।

इस प्रकार जैन शासन-कालसे अबतक प्रत्येक जाति, धर्म और समाजके स्मारक चिन्होंसे अलंकृत एवं विभूषित पटना-नगर मनुष्य मात्रका गौरव स्थान है। अतएव मनुष्य मात्रका कर्त्तव्य है, कि सर्व तो भावसे अपनी स्मृतियोंकी इतिहासके एक बड़े भारी अंशको नष्ट होनेसे बचाकर सुरक्षित रखें तथा पटनेको पवित्र तीर्थस्थान समझकर समय-समयपर यथा योग्य सहायता प्रदान करके धार्मिक एवं आर्थिक विषयोंमें उन्नतिकी ओर अग्रसर करना चाहिये। इतिशम्।

उपसर्गाः क्षयं यान्ति छिद्यन्त विघ्नवल्लयः
मनःप्रसन्नतामेति पूज्यमानेजिनेश्वरे ॥ १ ।

जो क्षुद्र भी इसको समझ प्रेमार्द्र हो अपनायेंगे
पर तुच्छ शिक्षापर अहो वे ध्यान निज ले जायेंगे
पढ़कर न चुप होंगे करेंगे कार्यमें परिणत इसे
हम भी सफलता सत्य समझेंगे अहो अपनी इसे

ओ३म् शान्तिरस्तु शुभमस्तु ॥

समाप्त

[विज्ञापन]

मैं अपने धर्मबन्धुओंको यह भी सूचित कर देना चाहता हूं कि दीपमालिका पूजन तथा पर्यूषण कर्त्तव्य आदि पुस्तकोंके प्रथम संस्करण समाप्त हो चुके है। और द्वितीय संस्करण निकालनेका विचार हो रहा है यदि कोई सज्जन गण अपना द्रव्य इस सदुपयोगमें लगाकर पुण्योपार्जन करना चाहें तो मुझे आपना नाम तथा स्थान देकर अनुगृहित करें तो उनके नामसे ही समस्त पुस्तकोंके संस्करण तयार कराके अमूल्य बितीर्ण कराये जायें।

अब मैंने विवाह पद्धतिके सिवाय १५ संस्करण और लिखने प्रारम्भ करदिये हैं जो सज्जन इनको अपने नामसे अमूल्य वितीर्ण करा कर अपना द्रव्य सदुपयोगमें लगा सम्यक्त की पुष्टि तथा धार्म्मिक लाभ लेना चाहें वह मुझे सूचित करें।

जैन धर्मका महत्व नामक पुस्तक अब मेरे पास नहीं हैं जो सज्जन मंगाना चाहें वह नीचे लिखे पतेसे मंगालें।

श्रीयुत बाबूचांदारामजी चेला रामजी जैनी
ठि० छतरहट्ट बाजार अन्दर पाकदरवाजा
मुलतान सिटी [पंजाब]

धर्म हितैषी
सूर्यमल यतिः

मुद्रक—भोलानाथ टण्डन
नारायण प्रेस
नं० १४ मदनमोहन चटर्जी लेन, कलकत्ता ।